धम्मपदं

[हिन्दी-अनुवाद, प्रासंगिक अर्थकथा, बौद्ध-शब्द-सूची-सहित]

बहुजन कल्याण प्रकाशन
३६०/१६३ मातादीनरोड, लखनऊ ३

❀ नमो रत्न त्रयस्स ❀

धम्मपदं

हिन्दी-अनुवाद, प्रासंगिक अर्थकथा, बौद्ध-शब्द-सूची-सहित

लेखक

श्री चंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु

प्रकाशक

बहुजन कल्याण प्रकाशन

३६०/१६३ मातादीनरोड, लखनऊ ३

पूज्य-चरण गुरुदेव
निखिल-शास्त्र-निष्णात, ज्ञान-समुद्र, निर्वाण-प्राप्त
श्रीमत् भदन्त बोधानन्द महास्थविर
की पुण्य-स्मृति में

प्रथमावृत्ति, १९६४
मूल्य : दो रुपया

प्रकाशक
बहुजन-कल्याण प्रकाशन
३६०/१९३ मतादीन रोड,
लखनऊ

मुद्रक
समाज-सेवा प्रेस
सआदतगंज,
लखनऊ

प्राक्कथन

धम्मपद पृथ्वीतल की पवित्रतम पुस्तकों में अनुपम है। संसार की सभी सभ्य भाषाओं में इसके अगणित अनुवाद हुए हैं और धरती के अनन्त कोटि मानवों की धार्मिक प्यास इससे बुझी एवं उनमें सम्यक् ज्ञान का प्रकाश हुआ है। धम्मपद गीता की तरह एक ही व्यक्ति को, एक ही समय और एक ही स्थान पर विविध दार्शनिक विचारों को अपने साँचे में ढालकर समझाने का प्रयत्न नहीं है, अपितु यह एक ही सद्धर्म के रहस्य को, भिन्न-भिन्न समयों, स्थानों और प्रसंगों पर शास्ता भगवान् बुद्ध द्वारा विविध व्यक्तियों को आदेशित उपदेशों का संग्रह है।

पचास वर्ष पूर्व निर्वाण-प्राप्त पूज्यचरण गुरुदेव भदन्त बोधानन्द महास्थविर द्वारा मुझे इसका दर्शन हुआ। तभी मन में यह प्रश्न उठा कि इस ग्रन्थ की २६ वर्गों में संकलित ४२३ पवित्र गाथाओं को भगवान् ने कब, कहाँ, किस प्रसंग में, किसके प्रति कहा? गुरुदेव ने बँगला में एक अट्ठकथा दिखाकर उसका हिंदी-अनुवाद करने का परामर्श दिया। परन्तु कथाएँ इतनी लम्बी थीं कि कहीं-कहीं मूल उपदेश ही उनमें डूब जाता था। विचार आया, उपदेशों के साथ अर्थकथाओं का उतना ही सारांश होना चाहिए जितने से उस उपदेश का रहस्य ज्ञात हो जाय।

श्रद्धेय महापंडित राहुल सांकृत्यायन से आशा की गई थी कि वह ऐसा करेंगे किंतु समयाभाव से उन्होंने अपने अनुवाद में उपदेशों के स्थान और व्यक्तियों के नाम-मात्र दे दिये, प्रसंग नहीं दिया। इधर त्रिपिटकाचार्य पूज्य भिक्षु धर्मरक्षितजी ने धम्मपदट्ठकथाओं का संक्षिप्तीकरण किया किन्तु वह भी विस्तृत ही दिखाई दिया। पूज्य भदन्त आनंद कौसल्यायनजी से भी कथाओं को दो-दो चार-चार पंक्तियों में लिख देने की प्रार्थना की गई, किन्तु पूरी नहीं हुई। अंत में अपनी भावना के अनुसार मुझे स्वयं ही इसमें जुटना पड़ा।

अब यह पवित्र ग्रन्थ प्रासंगिक कथाओं के संक्षिप्त सार, मूल गाथाओं और उनके हिन्दी-अनुवाद-सहित धर्मानुरागी सज्जनों के सामने उपस्थित है। इसके लिखने में शब्दशः अनुवाद की शैली ग्रहण न करके

भावानुवाद द्वारा अर्थ को सुबोध और यथासाध्य मुहाविरेदार हिन्दी में लिखने में मेरा प्रयास अधिक रहा है। क्योंकि पद्य में जब कोई बात लिखी जाती है, तो कविता के बन्धन के कारण, शब्दों का घटाव-बढ़ाव और शब्द-परिवर्तन करना ही पड़ता है। अनुवाद में भाषा के प्रवाह में पद्य का भाव व्यक्त हो जाने से पाठकों को आनंद मिलता है। ऐसा करने में मैंने गाथाओं के परंपरागत अर्थों का पूरा ध्यान रखा है।

परिस्थिति-वश यह काम इतनी शीघ्रता में करना पड़ा कि कापी लिखता गया और प्रेस को देता गया। ऐसा करने में मुझसे जो भूलें हुई हैं, यदि सुविज्ञ वाचक उन्हें बताने की कृपा करेंगे, तो अगले संस्करण में सुधार दिया जायगा।

२५ फरवरी, १९६४] —चंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु

वग्ग-सूची

❀ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ❀

१—यमकवग्गो

श्रावस्ती के जेतवन महाविहार में एक अंधे चक्खुपाल अर्हत भिक्षु थे। एक दिन भिक्षुओं ने पूछा—अर्हत भिक्षु चक्खुपाल किस कारण अंधे हुए? भगवान् ने कहा—पूर्व-जन्म में वैद्य होकर चक्खुपाल ने एक स्त्री की आँखों को फोड़ डाला था। वह पाप उनके पीछे लगा था। यह कहकर उपदेश देते हुए भगवान् ने कहा—

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततो 'नं दुक्खमन्वेति चक्कं 'व वहतो पदं॥ १॥

मन सभी धर्मों अर्थात् कर्मों, वृत्तियों या अनुभूतियों का अगुआ है। मन ही उनका प्रधान है, सारे कर्म, अनुभूतियाँ या वृत्तियाँ मनोमय हैं। यदि कोई व्यक्ति दुष्ट मन से बोलता या काम करता है तो दुःख उसका पीछा उसी प्रकार करता है जैसे रथ का पहिया वाहन अर्थात् बैल या घोड़े के पैरों का॥ १॥

श्रावस्ती में भगवान् के दर्शन से प्रसन्न हो ब्राह्मण-पुत्र मट्ठकुण्डली मरकर देवलोक में गया। यह मालूम करके उसके पिता ने भगवान् से उसके स्वर्ग जाने का कारण पूछा। तब भगवान् ने कहा—

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति छाया'व अनपायिनी॥ २॥

मन सभी धर्मों अर्थात् कर्मों, वृत्तियों या अनुभूतियों का अग्रणी है, मन ही प्रधान है, सभी कर्म मनोमय हैं। यदि कोई प्रसन्न मन से बोलता या काम करता है, तो सुख उसी प्रकार उसका अनुसरण करता है, जैसे कभी साथ न छोड़नेवाली छाया मनुष्य के पीछे-पीछे चलती है ॥ २ ॥

थुल्लतिस्स स्थविर अपने से बड़े भिक्षुओं का आदर नहीं करते थे। यह शिकायत पहुँचने पर भगवान् ने थुल्लतिस्स से कहा—

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥ ३ ॥

जो अपने मन में ऐसा सोचते रहते हैं कि उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे मारा, उसने मुझे हरा दिया, उसने मुझे लूट लिया, उनका वैर कभी शान्त नहीं होता ॥ ३ ॥

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥ ४ ॥

उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे मारा, उसने मुझे हरा दिया, उसने मुझे लूट लिया—ऐसी बातें जो मन में नहीं सोचते, उनका वैर शान्त हो जाता है ॥ ४ ॥

काली यक्षिणी अपनी सौत के पुत्र को मार डालती थी। एक बार यक्षिणी जब बच्चे को मारने आई तो भयभीत हो उसकी सौत बच्चे को लेकर जेतवन-विहार में दौड़ी हुई आई और भगवान् से गिड़गिड़ाई—भगवन्! मेरे पुत्र की रक्षा कीजिए। तब भगवान् ने काली यक्षिणी को उपदेश दिया—

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥ ५ ॥

संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता; अवैर से ही वैर शान्त होता है। यही सदा से चला आया सनातन मानव धर्म है ॥ ५ ॥

कौशाम्बी के भिक्षुओं में परस्पर झगड़ा हुआ। समाधान के लिए वे जेतवन-विहार में आये, तो भगवान् ने उन्हें उपदेश दिया—

परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ॥ ६ ॥

अज्ञ लोग नहीं जानते कि हम इस संसार से जानेवाले हैं। किन्तु जो इस बात को जानते और इसका निरंतर चिंतन करते रहते हैं, उनके मन के सभी विकार शान्त हो जाते हैं ॥ ६ ॥

चुल्लकाल और महाकाल नाम के दो व्यापारी भिक्षु हुए। इनमें चुल्लकाल को तो उसकी स्त्री ने पकड़कर सफेद कपड़े पहना दिये, पर महाकाल भिक्षु ही रहा। इस पर भगवान् ने कहा—

सुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवुतं।
भोजनम्हि अमत्तञ्ञुं कुसीतं हीनवीरियं।
तं वे पसहति मारो वातो रुक्खं 'व दुब्बलं ॥ ७ ॥

जो शुभ ही शुभ देखते हुए विहार करता है, इंद्रियों में संयम नहीं करता, भोजन में मात्रा को नहीं जानता, आलसी और उद्योग-हीन रहता है, उसे 'मार' वैसे ही डिगा देता है, जैसे दुर्बल वृक्ष को वायु ॥ ७ ॥

असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवुतं।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं सद्धं आरद्धवीरियं।
तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं'व पब्बतं ॥ ८ ॥

जो अशुभ को देखते हुए विहार करता है, जो इन्द्रियों में संयम करता है, जो भोजन में मात्रा को जानता है, जो श्रद्धावान् और उद्योगी है, ऐसे पुरुष को मार वैसे ही नहीं हिला सकता जैसे वायु शिलामय पर्वत को ॥ ८ ॥

राजगृह के उपासकों ने सारिपुत्र को एक मूल्यवान् वस्त्र दिया, किन्तु उसे देवदत्त ने काटकर अपना चीवर बना लिया। इस पर भगवान् ने कहा—

अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति।
अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमरहति ॥ ९ ॥

जो पुरुष राग-द्वेष आदि चित्त-मलों को विना हटाये काषाय-

वस्त्र धारण करता है, संयम और सत्य से हीन वह व्यक्ति काषाय-वस्त्र धारण करने का अधिकारी नहीं है ॥ ९ ॥

योे च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो ।
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति ॥ १० ॥

जिसने चित्त-मलों का त्याग कर दिया है, जो शीलों से सुसंपन्न तथा संयम और सत्य से युक्त है, वही पुरुष काषाय-वस्त्र का अधिकारी है ॥ १० ॥

अग्रश्रावक सारिपुत्र और मौद्गल्यायन का पूर्व-आचार्य संजय था। एक बार अग्रश्रावकों ने संजय से भगवान् के पास चलने को कहा, तो उसने कहा—मैं नहीं जाऊँगा। जब यह बात भगवान् के पास पहुँची, तो भगवान् ने कहा—

असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो ।
ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कप्पगोचरा ॥ ११ ॥
सारञ्च सारतो ञत्वा असारञ्च असारतो ।
ते सारं अधिगच्छन्ति सम्मासङ्कप्पगोचरा ॥ १२ ॥

जो असार को सार और सार को असार समझते हैं, ऐसे मिथ्या संकल्पों में ग्रसित व्यक्ति सार को नहीं प्राप्त करते ॥ ११ ॥ जो सार को सार और असार को असार समझते हैं, ऐसे सम्यक् संकल्प से युक्त पुरुष ही सार को प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

जब नन्द स्थविर को राग उत्पन्न हुआ, तो भगवान् ने उसे स्वर्ग की अप्सरा को दिखाकर कहा—यदि तू इसे चाहता है, तो ब्रह्मचर्य का पालन कर। इस पर भिक्षुओं ने नन्द को बहुत लज्जित किया। तब नन्द ने समथ-विपश्यना कर शीघ्र ही अर्हत-पद को प्राप्त कर लिया। इस पर भगवान् ने कहा—

यथागारं दुच्छन्नं वुट्ठी समतिविज्झति ।
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति ॥ १३ ॥

यथागारं सुच्छन्नं वुट्ठी न समतिविज्झति ।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति ॥ १४ ॥

जैसे ठीक तरह से न छाये हुए घर में वर्षा का जल घुस जाता है, वैसे ही ध्यान-भावना से रहित चित्त में राग घुस जाता है ॥ १३ ॥ जैसे ठीक तरह से छाये हुए घर में वर्षा का जल नहीं घुसता, वैसे ही ध्यान-भावना से सुभावित चित्त में राग नहीं घुस पाता ॥ १४ ॥

राजगृह वेणुवन में भगवान् ने चुंद सूकरिक के संबंध में कहा—

इध सोचति पेच्च सोचति पापकारी उभयत्थ सोचति ।
सो सोचति सो विहञ्ञति दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो ॥१५॥

पाप करनेवाला इस लोक में शोक करता है और मरने के बाद परलोक में भी शोक करता है। पापी दोनो लोकों में शोक को प्राप्त होता है। वह अपने मलिन कर्मों को देखकर शोक करता और पीड़ित होता है ॥ १५ ॥

श्रावस्ती के जेतवन में भगवान् ने एक धार्मिक उपासक के संबंध में कहा—

इध मोदति पेच्च मोदति कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति ।
सो मोदति सो पमोदति दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो ॥ १६ ॥

पुण्य कर्म करनेवाला इस लोक में मोद करता है और मरने के बाद परलोक में भी मोद करता है, पुण्यात्मा दोनो स्थानों में मोद करता है। वह अपने कर्मों की विशुद्धि को देखकर प्रमुदित होता है ॥ १६ ॥

श्रावस्ती के जेतवन में भगवान् ने नरक को प्राप्त देवदत्त के संबंध में कहा—

इध तप्पति पेच्च तप्पति पापकारी उभयत्थ तप्पति ।
पापं मे कतन्ति तप्पति भीय्यो तप्पति दुग्गतिङ्गतो ॥ १७ ॥

पाप करनेवाला इस लोक में सन्तप्त होता है और मरने के बाद

परलोक में भी सन्तप्त होता है। पापी दोनो स्थानों में सन्ताप को प्राप्त होता है। 'मैंने पाप किया है' यह सोचकर सन्ताप करता है तथा दुर्गति को प्राप्त हो और भी अधिक सन्ताप करता है ॥ १७ ॥

श्रावस्ती के जेतवन में भगवान् ने स्वर्ग-गता सुमना देवी के संबंध में कहा—

इध नन्दति पेच्च नन्दति कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति ।
पुञ्ञं मे कतन्ति नन्दति भीय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो ॥ १८ ॥

जिसने पुण्य किया है वह इस लोक में आनन्द करता है, और परलोक जाकर भी आनन्दित होता है। पुण्यात्मा दोनो लोकों में आनन्द लाभ करता है। 'मैंने पुण्य किया है' यह सोचकर आनंदित होता है तथा सुगति को प्राप्त हो और अधिक आनंदित होता है ॥ १८ ॥

श्रावस्ती के जेतवन में भगवान् ने धर्म-ग्रन्थ पढ़नेवाले दो भिक्षुओं के संबंध में कहा—

बहुम्पि चे संहितं भासमानो न तक्करो होति नरो पमत्तो ।
गोपो'व गावो गणयं परेसं न भागवा सामञ्ञस्स होति ॥ १९ ॥

जो प्रमादी है, वह चाहे कितनी ही संहिताओं अर्थात् धर्मग्रन्थों का पाठ करे किंतु जो नर उसके अनुसार आचरण नहीं करता, वह दूसरों की गायें गिननेवाले ग्वाले की भाँति 'श्रमणत्व' का अधिकारी नहीं होता ॥ १९ ॥

अप्पम्पि चे संहितं भासमानो धम्मस्स होति अनुधम्मचारी ।
रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो ।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा स भागवा सामञ्ञस्स होति ॥२०॥

चाहे कोई अल्प-मात्र ही संहिता का पाठ करनेवाला हो, किंतु यदि वह धर्म के अनुसार आचरण करता हो, राग, द्वेष और मोह को त्यागकर भली भाँति सचेत और मुक्त-चित्त हो, यहाँ और वहाँ अर्थात् लोक और परलोक कहीं भी आसक्ति न रखता हो, तो वह 'श्रमणत्व' का अधिकारी होता है ॥ २० ॥

२—अप्पमादवग्गो

रानी सामावती भगवान् की सच्ची उपासिका थी। उसे उसकी सौत ब्राह्मण-बेटी मागंधी ने जला डाला था। मरने के बाद सामावती की क्या गति हुई, इस संबंध में कौशाम्बी के घोषिताराम में भगवान् ने कहा—

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥ १ ॥
एतं विसेसतो ञत्वा अप्पमादम्हि पण्डिता।
अप्पमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता ॥ २ ॥
ते झायिनो साततिका निच्चं दळ्ह-परक्कमा।
फुसन्ति धीरा निब्बाणं योगक्खेमं अनुत्तरं ॥ ३ ॥

अप्रमाद अमृत-पद का साधक है और प्रमाद मृत्यु-पद का। अप्रमादी नहीं मरते, प्रमादी मरे के ही समान होते हैं ॥ १ ॥ पंडित जन अप्रमाद के विषय में इस प्रकार विशेष रूप से जानकर श्रेष्ठ आचरण में रत हो अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं ॥ २ ॥ जो निरन्तर ध्यान-रत, नित्य दृढ़ पराक्रमी हैं, वे धीर पुरुष अनुत्तर योग-क्षेम आनंद-मंगल वाले निर्वाण पद को प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

राजगृह के वेणुवन में सेठ-पुत्र कुम्भघोसक को उपदेश—

उट्ठानवतो सतिमतो सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो।
सञ्ञतस्स च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्स यसोऽभिवड्ढति ॥ ४ ॥

जो उद्योगी, सचेत, पवित्र कर्म करनेवाला, संयमी, धर्मानुसार जीविका चलानेवाला एवं अप्रमादी है, उसका यश बढ़ता है ॥ ४ ॥

उसी वेणुवन में भगवान् ने निराश चुल्लपंथक स्थविर के अल्प समय में ही अर्हत-पद प्राप्त कर लेने के संबंध में कहा—

उट्ठानेन'प्पमादेन सञ्ञमेन दमेन च।
दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥ ५ ॥

मेधावी पुरुष उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम द्वारा अपने लिए ऐसा द्वीप बनावें, जिसे बाढ़ डुबा न सके ॥ ५ ॥

श्रावस्ती में होली में हो रहे हुरदंग व खुराफात के कारण सात दिन तक उपासक लोग घर से नहीं निकले। आठवें दिन क्षमा माँगते हुए उपासक गण जब भिक्षु-संघ को दान देने लगे, तो भगवान् ने कहा—

> पमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुम्मेधिनो जना।
> अप्पमादञ्च मेधावी धनं सेट्ठं'व रक्खति ॥ ६ ॥

> मा पमादमनुयुञ्जेथ मा कामरतिसन्थवं।
> अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं ॥ ७ ॥

मूर्ख और दुर्बुद्धि जन प्रमाद में लगते हैं, किंतु बुद्धिमान् पुरुष श्रेष्ठ धन की भाँति अप्रमाद की रक्षा करते हैं ॥ ६ ॥ प्रमाद में मत फँसो, काम-भोगों में मत फँसो, काम-रति में लिप्त मत हो। प्रमाद-रहित पुरुष ध्यान करने से महान् सुख को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

जेतवन-विहार में, महाकस्सप स्थविर को भगवान् ने प्रमादी और अप्रमादी लोगों की गति के संबंध में बताया—

> पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो।
> पञ्ञापासादमारुय्ह असोको सोकिनिं पजं।
> पब्बतट्ठो'व भूम्मट्ठे धीरो बाले अवेक्खति ॥ ८ ॥

पंडित पुरुष जब अप्रमाद से प्रमाद को हटा देता है, तब वह धीर पुरुष शोक-रहित हो, प्रज्ञा-रूपी प्रासाद पर चढ़कर, शोकाकुल अज्ञान प्रजा को वैसे ही देखता है जैसे पर्वत पर चढ़ा पुरुष भूमि पर स्थित वस्तु को ॥ ८ ॥

और, दो मित्र भिक्षुओं को भगवान् ने बताया—

> अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो।
> अबलस्सं'व सीघस्सो हित्वा याति सुमेधसो ॥ ९ ॥

प्रमादियों के बीच अप्रमादी तथा मोह-निद्रा में सोनेवालों के बीच

प्रज्ञा से जाग्रत् उत्तम बुद्धिवाला पुरुष उसी प्रकार आगे निकल जाता है जैसे तेज़ घोड़ा दुर्बल घोड़े से आगे निकल जाता है ॥ ९ ॥

इसी प्रकार वैशाली के कूटागार में भगवान् ने 'महाली' लिच्छवी को बताया—

अप्पमादेन मघवा देवानं सेट्ठतं गतो ।
अप्पमादं पसंसन्ति पमादो गरहितो सदा ॥ १० ॥

अप्रमाद अर्थात् आलस्य-रहित होने के कारण मघवा (इंद्र) देवताओं में श्रेष्ठ बना। अप्रमाद की सभी प्रशंसा करते हैं और प्रमाद की सदा निन्दा होती हैं ॥ १० ॥

इसी प्रकार जेतवन महाविहार में एक भिक्षु को प्रोत्साहन देते हुए भगवान् ने कहा—

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा ।
सञ्ञोजनं अणुं थूलं डहं अग्गी'व गच्छति ॥ ११ ॥

जो भिक्षु अप्रमाद में रत है अथवा प्रमाद से भय खानेवाला है, वह अग्नि की भाँति छोटे-मोटे सभी बन्धनों को जलाते हुए आगे बढ़ता चला जाता है ॥ ११ ॥

इसी प्रकार जेतवन महाविहार में निगम-वासी तिस्स स्थविर को प्रोत्साहित करते हुए भगवान् ने कहा—

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा ।
अभब्बो परिहाणाय निब्बाणस्सेव सन्तिके ॥ १२ ॥

जो भिक्षु अप्रमाद में रत है अथवा प्रमाद से भय खानेवाला है, उसका पतन होना संभव नहीं है, क्योंकि वह निर्वाण के समीप पहुँचा हुआ है ॥ १२ ॥

———

३—चित्तवग्गो

चालिय पर्वत पर भगवान् के मना करने पर भी 'मेधिय' स्थविर नीचे नदी-तट के आमों के बगीचे में विहार करने चले गये, पर उनका चित्त एकाग्र नहीं हुआ, तब भगवान् के पास आये। भगवान् ने उपदेश देते हुए कहा—

फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुन्निवारयं।
उजुं करोति मेधावी उसुकारो'व तेजनं ॥ १ ॥

चित्त क्षणिक है, चंचल है, इसे रोक रखना और इसका निवारण करना कठिन है। किन्तु मेधावी पुरुष इसे उसी प्रकार सीधा करता है जैसे बाण बनानेवाला बाण को ॥ १ ॥

वारिजो'व थले खित्तो ओकमोकत उब्भतो।
परिफन्दति'दं चित्तं मारधेय्यं पहातवे ॥ २ ॥

जैसे जलाशय से निकालकर स्थल पर फेंक दी गई वारिज मछली तड़फड़ाती है, वैसे ही यह चित्त मार (राग-द्वेषादि) के फन्दे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है ॥ २ ॥

श्रावस्ती में भगवान् ने एक भिक्षु को चित्त-दमन के लिए कहा—

दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थ कामनिपातिनो।
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥ ३ ॥

जिसका निग्रह करना कठिन है, जो बहुत हल्का होने से जहाँ चाहता है चला जाता है, ऐसे चित्त का दमन करना उत्तम है, क्योंकि दमन किया हुआ चित्त सुखदायक होता है ॥ ३ ॥

फिर एक उत्कंठित भिक्षु को, जो एक सेठ का पुत्र था, उपदेश देते हुए भगवान् ने कहा—

सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थ कामनिपातिनं।
चित्तं रक्खेथ मेधावी चित्तं गुत्तं सुखावहं ॥ ४ ॥

जिसे जानना कठिन है, जो अत्यंत चालाक है और जहाँ चाहता है

झट चला जाता है। ऐसे चित्त की बुद्धिमान् पुरुष रक्षा करे, क्योंकि सुरक्षित चित्त सुखदायक होता है ॥ ४ ॥

फिर स्थविर संघरक्षित को, जो खिन्न था, उपदेश दिया—

दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं ।
ये चित्तं सञ्ञमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ॥ ५ ॥

दूरगामी, अकेला विचरनेवाला, निराकार, गुहाशयी इस चित्त का जो संयम करेंगे, वही मार के बन्धन से मुक्त होंगे ॥ ५ ॥

चित्तहत्थ स्थविर को, जो छः बार चीवर छोड़कर सातवीं बार भिक्षु हुए थे, भयरहित करते हुए भगवान् ने कहा—

अनवट्ठितचित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो ।
परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ॥ ६ ॥

जिसका चित्त स्थिर नहीं है, जो सद्धर्म को नहीं जानता, जिसका चित्त प्रसन्नता से प्लावित नहीं है, उसकी प्रज्ञा पूर्ण नहीं हो सकती ॥ ६ ॥

अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो ।
पुञ्ञपापपहीणस्स नत्थि जागरतो भयं ॥ ७ ॥

जिसका चित्त राग-द्वेषादि मलों से रहित है, जिसका चित्त स्थिर है, जो पाप-पुण्य-विहीन है, उस जाग्रत् पुरुष के लिए भय नहीं है ॥ ७ ॥

श्रावस्ती में पाँच सौ भिक्षुओं को, जो एक बार भयभीत होकर पुनः ध्यान-भावना में एकाग्र-चित्त होने लगे थे, भगवान् ने उपदेश दिया—

कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा ।
योधेथ मारं पञ्ञायुधेन जितं च रक्खे अनिवेसनो सिया ॥ ८ ॥

इस शरीर को घड़े के समान भंगुर जान, इस चित्त को नगर-गढ़ के समान रक्षित और दृढ़ मानकर, प्रज्ञा-रूपी हथियार लेकर मार से युद्ध करे। जीतने के बाद अपनी रक्षा करे और आसक्ति-रहित रहे ॥ ८ ॥

पूतिगत्त तिस्स स्थविर के फोड़ों से पीड़ित शरीर को करुणामय भगवान् ने स्वयं गरम पानी से साफ करके चारपाई पर लिटा दिया, और उसकी दशा देखकर कहा—

अचिरं वत'यं कायो पठविं अधिसेस्सति ।
छुद्धो अपेतविञ्ञाणो निरत्थं'व कलिङ्गरं ॥ ९ ॥

अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतना-रहित हो निरर्थक काठ की भाँति पृथिवी पर जा पड़ेगा ॥ ९ ॥

कोसल देश में नन्द गोप के मारे जाने पर भगवान् ने कहा—

दिसो दिसं यन्तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं ।
मिच्छापणिहितं चित्तं पापियो'नं ततो करे ॥ १० ॥

जितनी हानि शत्रु शत्रु की अथवा वैरी वैरी की करता है, मनुष्य की उससे कहीं अधिक हानि झूठे मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है ॥१०॥

कोसल देश के सोरेय्य स्थविर का आसक्त चित्त ठीक मार्ग पर लगा देखकर भगवान् ने कहा—

न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका ।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो'नं ततो करे ॥ ११ ॥

जितनी भलाई न माता-पिता कर सकते हैं, न दूसरे भाई-बंधु, उससे कहीं अधिक भलाई मनुष्य का ठीक मार्ग पर लगा चित्त करता है ॥ ११ ॥

४—पुप्फवग्गो

चारिका से लौटे हुए पाँच सौ भिक्षु जेतवन-विहार में अपने विचरे हुए प्रदेशों की भूमियों का वर्णन कर रहे थे । यह सुन भगवान् ने भिक्षुओं को आध्यात्मिक भूमियों में परिकर्म करने का उपदेश देते हुए कहा—

को इमं पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं ।
को धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फंइव पचेस्सति ॥ १ ॥

इस पृथिवी को तथा देवताओं-सहित उस यम-लोक को कौन जीतेगा ? कौन चतुर पुरुष सुन्दर रूप से उपदेश किये हुए धर्म के पदों को पुष्प की भाँति चुनेगा ? ॥ १ ॥

सेखो पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इदं सदेवकं ।
सेखो धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फंइव पचेस्सति ॥ २ ॥

स्रोतापन्न, सकृदागामी और अनागामी शैक्ष पुरुष ही इस पृथिवी को एवं देवताओं-सहित यम-लोक को विजय करेगा। कुशल शैक्ष पुरुष ही सुन्दर रूप से उपदेश किये हुए धर्म के पदों को पुष्प की भाँति चयन करेगा ॥ २ ॥

श्रावस्ती में मरीचि कर्मस्थानिक स्थविर को उपदेश—

फेणूपमं कायमिमं विदित्वा मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो ।
छेत्त्वान मारस्य पपुप्फकानि अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥ ३ ॥

इस काया को फेन के समान अथवा मरु-मरीचिका के समान मानकर, मार के फन्दे को तोड़कर, यमराज को न दिखाई देनेवाले बनो ॥३॥

विडूडभ शाक्यों का दासी-पुत्र था किंतु उसने कपिलवस्तु पर चढ़ाई करके शाक्य-कुल को उच्छिन्न कर दिया था। यह महापातक करके वह राप्ती नदी के किनारे पड़ाव डाले पड़ा था कि अकस्मात् आधी रात को भयंकर बाढ़ आई जिससे विडूडभ के साथ उसकी सारी सेना नदी में बह गई। इस समाचार को सुनकर भगवान् ने कहा—

पुप्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरम् ।
सुत्तं गामं महोघो'व मच्चु आदाय गच्छति ॥ ४ ॥

भोगैश्वर्य के फूलों को चुननेवाले आसक्ति-युक्त मनुष्य को मृत्यु उसी प्रकार बहा ले जाती है जैसे सोते हुए गाँव को बड़ी बाढ़ ॥ ४ ॥

श्रावस्ती में एक पतिपूजिका अपने पति के पास जाने की कामना से भगवान् की पूजा करती थी। एक दिन भिक्षुओं को भोजन कराकर सन्ध्या को अचानक उसकी मृत्यु हो गई। इस पर भगवान् ने कहा—

पुप्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरं ।
अतित्तं येव कामेसु अन्तको कुरुते वसं ॥ ५ ॥

भोगैश्वर्य-रूपी फूलों को चुननेवाले असक्ति-युक्त पुरुष को, काम-भोगों में अतृप्त रहते हुए ही, मौत अपने वश में कर लेती है ॥ ५ ॥

श्रावस्ती में कोसिय सेठ बड़ा कंजूस था। एक दिन वह मालपुए बनवा रहा था कि भगवान् के प्रिय शिष्य मौद्गल्यायन उसके पास पहुँचे और उसे ऐसा प्रभावित किया कि वह भगवान् के पास आया और भिक्षु-संघ को मालपुओं का दान किया। इस पर भगवान् ने कहा—

यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे॥ ६॥

जिस प्रकार भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को बिना हानि पहुँचाये रस को लेकर चल देता है, उसी प्रकार मुनि गाँव में भिक्षा के लिए विचरण करे॥ ६॥

श्रावस्ती में पाठिक नामक आजीवक साधु को माननेवाली एक गृह-स्वामिनी ने भिक्षु-संघ के साथ भगवान् को भोजन के लिए निमंत्रित किया। भोजनोपरांत भगवान् जब दानानुमोदन कर रहे थे कि आजीवक गृहस्वामिनी और भगवान् दोनो को बुरा-भला कहता हुआ भाग गया। तब गृहस्वामिनी को विचलित देख भगवान् ने कहा—

न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं।
अत्तनो'व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च॥ ७॥

मनुष्य को चाहिए कि वह केवल अपने ही कृत और अकृत को देखे; दूसरों के कृत-आकृत की न खोज करे और न दूसरों के विरोधी वचनों पर ध्यान दे॥ ७॥

भगवान् के आदेश से आनंद स्थविर राजा प्रसेनजित् की मल्लिका और वासमखत्तिया नामक रानियों को बुद्ध-वचन पढ़ाने जाते थे। उनमें मल्लिका तो मन लगाकर पढ़ती थी किंतु खत्तिया न मन लगा कर पढ़ती थी और न याद करती थी। इस पर भगवान् ने कहा —

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो॥ ८॥

जैसे सुन्दर वर्ण-युक्त गंधहीन फूल होता है, वैसे ही उपदेश के अनुसार आचरण न करनेवाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है॥ ८॥

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं सगन्धकं ।
एवं सुभासिता वाचा सफला होति सकुब्बतो ॥ ६ ॥

जैसे सुन्दर वर्ण-युक्त सुगंध-पूर्ण फूल होता है, वैसे ही उपदेश के अनुसार आचरण करनेवाले के लिए सुभाषित वाणी सफल होती है ॥६॥

विशाखा उपासिका भगवान् की परम भक्त थी। उसने 'पूर्वाराम' नामक एक विशाल बहुमूल्य बिहार बनवाकर भगवान् के साथ भिक्षुसंघ को दान किया था। एक दिन वह अपने किये हुए दान का गान कर रही थी कि भिक्षुओं ने भगवान् से जड़ दिया। इस पर भगवान् ने कहा—

यथापि पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे बहू ।
एवं जातेन मच्चेन कत्तब्बं कुसलं बहुं ॥ १० ॥

जिस प्रकार फूलों के ढेर में से बहुत-सी मालाएँ बनाये, उसी प्रकार संसार में उत्पन्न हुए प्राणी को चाहिए कि वह बहुत-से शुभ कर्मों को करे ॥ १० ॥

श्रावस्ती में एक दिन आनंद स्थविर ने भगवान् से पूछा—"भन्ते ! सार-गंध और पुष्पगंध तो सीधी हवा में जाती है। क्या कोई ऐसी भी सुगंध है जो सीधी-उल्टी दोनों हवाओं में जाती हो ?" इसके उत्तर में भगवान् ने कहा—

न पुप्फगन्धो पटिवातमेति न चन्दनं तगरमल्लिका वा ।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति ॥११॥

फूलों की सुगंध हवा के विरुद्ध नहीं जाती और न चन्दन, तगर या चमेली की सुगंध हवा के विरुद्ध जाती है, किन्तु सज्जनों की सुगंध हवा के भी विरुद्ध जाती हैं। सत्पुरुष सभी दिशाओं में अपनी सुगंध फैलाते रहते हैं ॥ ११ ॥

चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी ।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ॥ १२ ॥

चन्दन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगन्धों से सदाचार की सुगन्ध उत्तम होती है ॥ १२ ॥

राजगृह की पिप्पल-गुहा में रहते समय एक बार स्थविर महा काश्यप समाधि से उठकर भिक्षा माँगने गये तो देवराज इन्द्र ने तंतुवाय का रूप धारण कर पात्र भरकर स्थविर को पिंडदान किया। उस पिंडदान में भाँति-भाँति के व्यंजन थे। वेणुवन में विहार करते हुए भगवान् को जब यह कथा भिक्षुओं ने सुनाई तो भगवान् ने कहा—

अप्पमत्तो अयं गन्धो या'यं तगरचन्दनी।
यो च सीलवतं गन्धो वाति देवेसु उत्तमो ॥ १३ ॥

तगर और चन्दन की जो यह गंध फैलती है वह अल्प-मात्र है, और जो यह शीलवन्तों की उत्तम सुगन्ध है, यह देवताओं में भी फैल जाती है ॥ १३ ॥

राजगृह के इसिगिल पर्वत की गुहा में विहार करनेवाले गोधिक स्थविर ने रोग के कारण ध्यान प्राप्त न करके छुरे से गर्दन काटकर जब आत्म-हत्या कर ली, तो 'मार' गोधिक के पुनर्जन्म को खोजने लगा। इसपर भगवान् ने कहा—

तेसं सम्पन्नसीलानं अप्पमादविहारिनं।
सम्मदञ्ञाविमुत्तानं मारो मग्गं न विन्दति ॥ १४ ॥

जो शीलवान् आलस्य-हीन हो विहरते हुए यथार्थ ज्ञान द्वारा विमुक्त हो गये हैं, उनके मार्ग को मार नहीं पकड़ सकता ॥ १४ ॥

श्रावस्ती में गरहादिन्न नामक निर्ग्रन्थ-श्रावक ने एक बार भिक्षुओं के साथ भगवान् को निमन्त्रित करके सबको अग्निकुण्ड में गिराकर छकाना चाहा, किंतु भगवान् के अनुभाव से अग्निकुण्ड में कमल-पुष्प उग आया। भोजनोपरान्त दानानुमोदन करके भगवान् ने कहा—

यथा संकारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे।
पदुमं तत्थ जायेथ सुचिगन्धं मनोरमं ॥ १५ ॥
एवं संकारभूतेसु अन्धभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पञ्ञाय सम्मासम्बुद्धसावको ॥ १६ ॥

जिस प्रकार महापथ पर फेंके हुए कूड़े के ढेर पर मनोरम, सुगन्धित गुलाब-पद्म उत्पन्न होवे, इसी प्रकार कूड़े के समान अन्धे हो रहे पृथक्-जनों अज्ञों में सम्यक् संबुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से अत्यधिक शोभायमान होता है ॥ १५, १६ ॥

५—बालवग्गो

कोसल-नरेश प्रसेनजित् एक गरीब सेवक की स्त्री पर मोहित था, इस लिए उसे संध्या तक लौट आने की आज्ञा देकर किसी काम से दूर भेज दिया। रात में नगर-द्वार बंद हो गये। भयभीत सेवक जेतवन-विहार में जाकर सोया। रात में राजा ने भयानक स्वप्न देखा और चिंतित हो सवेरे भगवान् के पास जाकर बोला—"भन्ते! आज की रात बड़ी लम्बी जान पड़ी।" उसी समय वह सेवक बोल उठा—"भन्ते! कल योजन बड़ा लम्बा जान पड़ा।" दोनो की बातें सुनकर भगवान् ने कहा—

दीघा जागरतो रत्ति दीघं सन्तस्स योजनं।
दीघो बालानं संसारो सद्धम्मं अविजानतं ॥ १ ॥

जागते रहते की रात लम्बी होती है, थके हुए के लिए योजन लम्बा होता है। सद्धर्म को न जाननेवाले मूढ़ों के लिए जन्म-मरण-रूप संसार-चक्र लम्बा होता है ॥ १ ॥

महाकश्यप स्थविर के दो शिष्य थे: एक आज्ञाकारी, दूसरा कुटिल। एक दिन स्थविर आज्ञाकारी शिष्य के साथ भिक्षाटन के लिए गये, तो कुटिल विहार में आग लगाकर भाग गया। यह सुनकर भगवान् ने कहा—

चरञ्चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो।
एकचरियं दळ्हं कयिरा नत्थि बाले सहायता ॥ २ ॥

यदि विचरण करते हुए अपने से अच्छा या अपने-जैसा साथी न मिले, तो दृढ़ता के साथ अकेला ही रहे। मूढ़ के साथ मित्रता अच्छी नहीं ॥ २ ॥

श्रावस्ती में एक कंजूस धनिक रहता था। वह मरकर एक चांडाल के घर पैदा हुआ। जब वह सयाना हुआ, तो उसे जातिस्मर-ज्ञान हो गया। एक दिन भीख माँगता हुआ वह अपने पूर्वजन्म के पुत्र मूलसिर के घर को अपना समझकर बेधड़क अंदर घुस गया। मूलसिर ने उसे पिटवाकर निकलवा दिया। यह समाचार सुन भगवान् ने उसे जेतवन में बुलवाकर कहा—

पुत्ता म'त्थि धनम्म'त्थि इति बालो विहञ्ञति ।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्तो कुतो धनं ॥ ३ ॥

यह मेरा पुत्र है, यह मेरा धन है, ऐसा सोचकर मूर्ख परेशान होता है। जब अपना शरीर ही अपना नहीं, तो कहाँ पुत्र और कहाँ धन ? ॥ ३ ॥

श्रावस्ती में दो गिरहकट थे। दोनो एक दिन जेतवन-बिहार में धर्म-श्रवण करने गये। उनमें एक भगवान् का उपदेश सुनकर स्रोतापन्न हो गया, दूसरा गिरह काटकर पाँच मुद्रा घर लाया। दूसरे दिन गिरहकट के घर भोजन बना और स्रोतापन्न के घर आग भी न जली। तब गिरहकट ने व्यंग्य में उसकी स्त्री से कहा—"क्या तू अपने पांडित्य से भोजन-प्रबंध नहीं कर सकती ?" स्रोतापन्न ने भगवान् के पास जाकर सब कह सुनाया। भगवान् ने कहा—

यो बालो मञ्ञती बाल्यं पण्डितो वापि तेन सो ।
बालो च पण्डितमानी स वे बालो'ति वुच्चति ॥ ४ ॥

यदि मूर्ख मनुष्य समझता है कि मैं मूर्ख हूँ, तो उतने अंश में वह पंडित है। किंतु जो मूर्ख होते हुए भी अपने को पंडित समझता है, वही यथार्थ मूर्ख है ॥ ४ ॥

महास्थविरों के चले जाने पर जेतवन की धर्मसभा के आसन पर उदायी स्थविर बैठने लगे। एक दिन बाहर से आये भिक्षुओं ने उनसे गंभीर प्रश्न पूछे, तो उदायी उनका उत्तर न दे सके। भिक्षुओं ने यह बात जब भगवान् से कही, तो भगवान् ने कहा—

यावजीवम्पि चे बालो परिडतं पयिरुपासति ।
न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा ॥ ५ ॥

यदि मूर्ख जीवन भर पंडित की सेवा में रहे, तो भी वह धर्म को उसी तरह नहीं जान सकता जैसे दब्बी कलछी सूप के रस को ॥ ५ ॥

तीस भद्रवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान् के अनमतग्ग सुत्त को सुनकर उसी जगह अर्हत्व प्राप्त कर लिया। यह बात जब भगवान् तक पहुँची तो उन्होंने कहा—

मुहुत्तमपि चे विञ्ञू परिडतं पयिरुपासति ।
खिप्पं धम्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा ॥ ६ ॥

विज्ञ पुरुष यदि एक मुहूर्त भी पंडित की सेवा में रहे, तो वह शीघ्र धर्म को जान लेता है, जैसे जिह्वा सूप के रस को ॥ ६ ॥

सुप्रबुद्ध कोढ़ी था। वेणुवन विहार में भिक्षुओं ने उसके कोढ़ी होने का कारण पूछा, तो भगवान् ने बताया—पूर्व-जन्म में उसने तगरशिखी प्रत्येक बुद्ध को देखकर थूकते हुए कहा था, यह कौन कोढ़ी जा रहा है। इसी पाप के कारण उसे यह दंड मिला। भगवान् ने कहा—

चरन्ति बाला दुम्मेधा अमित्तेनेव अत्तना ।
करोन्तो पापकं कम्मं यं होति कटुकप्फलं ॥ ७ ॥

दुर्बुद्धि मूर्ख पाप करके स्वयं अपना शत्रु हो विचरण करता है, क्योंकि पाप-कर्म का फल कड़ुवा होता है ॥ ७ ॥

श्रावस्ती के किसी गाँव के खेत में चोर लोग एक थैली भूल गये। खेत के मालिक ने उसे खेत में ही गाड़ दिया। गाँववाले चोरों को ढूँढते हुए उस थैली को पा कृषक को पकड़कर राजा के पास ले गये। राजा ने उसे कठोर दंड दे दिया। किंतु वह कृषक बराबर उस थैली को 'विष है'–'विष है' कहता रहा। जब राजा को पता चला, तो पछताया और कृषक को दंडमुक्त करके भगवान् के पास गया। भगवान् ने कहा—

न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति ।
यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं पटिसेवति ॥ ८ ॥

वह काम करना ठीक नहीं, जिसे करके पीछे पछताना पड़े और जिसका फल अश्रुमुख रोते हुए भोगना पड़े ॥ ८ ॥

सुमन माली राजगृह के राजा बिम्बिसार को रोज ८ नाली फूल देता था। एक दिन भगवान् को भिक्षाटन करते देख उसने उन फूलों से भगवान् की पूजा की। राजा को जब यह पता लगा, तो प्रसन्न हो उसने उसे 'सर्वाष्टक' दिया। इस पर धर्म-सभा में भगवान् ने कहा—

तञ्च कम्मं कतं साधु यं कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो विपाकं पटिसेवति ॥ ६ ॥

उस काम का करना ठीक है जिसे करके पछताना न पड़े और जिसका फल भोगने में मन प्रसन्न हो ॥ ६ ॥

उप्पलवण्णा श्रावस्ती के एक सेठ की अत्यंत रूपवती कन्या थी। उसे पाने के लिए देश के अनेक राजे आतुर थे। इस मुसीबत से बचने के लिए सेठ ने कन्या को भिक्षुणी-आश्रम में ले जाकर प्रव्रजित करा दिया। थोड़े ही दिनों में अर्हत-पद प्राप्त करके वह अन्धवन में रहने लगी। एक दिन उप्पलवण्णा जब भिक्षाटन को गई, तो उसके मामा का लड़का नन्द चोर की तरह कुटी में घुसकर उसकी चारपाई के नीचे छिप रहा। उप्पलवण्णा भिक्षाटन से लौटकर जब अपनी चारपाई पर सोई, तो नन्द नीचे से निकल उसके चिल्लाते हुए बलात्कार कर चल दिया। किंतु कुटी से बाहर होते ही पृथिवी फटी और नंद उसमें समा गया! यह समाचार सुन भगवान् ने कहा—

मधू'वा मञ्ञति बालो याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चती पापं अथ बालो दुक्खं निगच्छति ॥ १० ॥

जब तक पाप-कर्म का फल नहीं मिलता, तब तक मूर्ख उसे मधु के समान मीठा समझता है, किंतु जब पाप का परिपाक होता है, तो मूर्ख दुखी होता है ॥ १० ॥

राजगृह में जम्बूक नामक एक आजीवक साधु रहता था। उसके पास जो चढ़ावा आता, उसे वह कुश की नोक से जिह्वा में लगाता और

कहता, इसके खाने से मेरा तप भंग हो जायगा। इस प्रकार वह वर्षों रहा। एक दिन प्रभावित हो वह भगवान् के शरणापन्न हुआ, तो उसे शीघ्र अर्हत पद प्राप्त हो गया। इस पर भगवान् ने कहा—

मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेथ भोजनं।
न सो संखतधम्मानं कलं अग्घति सोलसिं ॥ ११ ॥

मूर्ख मनुष्य यदि कुश की नोक से महीने-महीने पर भी भोजन करे, तो भी वह धर्म के जानकारों के सोलहवें भाग के समान नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

एक दिन राजगृह के वेणुवन में लक्ष्मण स्थविर ने भगवान् से कहा—मैंने एक अहिप्रेत को देखा जिसका सिर मनुष्य के समान था और धड़ साँप-जैसा। उसके सिर से उठी हुई ज्वाला पूँछ तक जाती थी और पूँछ से उठी हुई सिर तक। भगवान् ने कहा—वह अपने पूर्व-जन्म में एक प्रत्येक बुद्ध की कुटी जलाकर इस गति को प्राप्त हुआ—

न हि पापं कतं कम्मं सज्जु खीरं'व मुच्चति।
डहन्तं बालमन्वेति भस्माच्छन्नो'व पावको ॥ १२ ॥

पाप-कर्म ताजे दूध की तरह तुरन्त नहीं जम जाता, कुछ काल के बाद फल देता है। वह राख से ढकी आग की तरह जलाता हुआ मूर्ख मनुष्य का पीछा करता है ॥ १२ ॥

इसी प्रकार की कथा आ० महामौद्गल्यायन ने सुनाई, तो भगवान् ने कहा—मैंने भी बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए उस प्रेत को देखा था। उसके सिर को साठ हजार प्रज्वलित लौहकूट ऊपर से गिरकर फोड़ते थे। उसने पूर्व-जन्म में कंकड़ चलाकर एक प्रत्येक बुद्ध के कान को आरपार छेद दिया था। उस पाप-कर्म से उसकी यह गति हुई—

यावदेव अनत्थाय ञत्तं बालस्स जायति।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं मुद्धमस्स विपातयं ॥ १३ ॥

मूर्ख मनुष्य का जितना भी ज्ञान है, सब उसके ही अनर्थ के लिए

होता है। वह उसकी मूर्धा (प्रज्ञा) को गिराकर उसके शुभ-कर्मों का नाश कर देता है ॥ १३ ॥

मच्छिकासंड नगर में चित्त गृहपति के बनवाये उद्यान-विहार में सुधम्म स्थविर रहते थे। एक दिन गृहपति ने अग्रश्रावकों को निमंत्रित करके सुधम्म से कहा—भन्ते ! मैंने अग्रश्रावकों को भोजन के लिए निमंत्रित किया है। आप भी उनके साथ भोजन करने आइए। सुधम्म पीछे निमंत्रण पाने को अपमान समझ रुष्ट हो विहार छोड़कर श्रावस्ती चले आये। किन्तु भगवान् ने सुधम्म को ही दोषी ठहराकर कहा—

असतं भावनमिच्छेय्य पुरेक्खारञ्च भिक्खुसु ।
आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च ॥ १४ ॥
ममेव कतमञ्ञन्तु गिही पब्बजिता उभो ।
ममेवातिवसा अस्सु किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि ।
इति बालस्स सङ्कप्पो इच्छा मानो च वड्ढति ॥ १५ ॥

जो अप्रस्तुत वस्तु की चाह करता है, भिक्षुओं में बड़ा बनना चाहता है, गृही और प्रव्रजित दोनों मेरा ही किया मानें एवं सभी प्रकार के कामों में मेरे अधीन रहें—इस प्रकार के संकल्प करनेवाले मूढ़ मनुष्य की इच्छाएँ और अभिमान बढ़ते हैं ॥ १४, १५ ॥

पूर्व-जन्म का सुकृती तिस्स सात वर्ष की आयु में ही प्रव्रजित हुआ। उसका बड़ा सत्कार हुआ। किन्तु तिस्स श्रावस्ती से बहुत दूर जाकर एक वन में वास करने लगा। वहाँ उसका नाम 'वनवासी तिस्स' पड़ा। श्रावस्ती की धर्म-सभा में एक दिन उसकी चर्चा हुई, तो भगवान् ने कहा—

अञ्ञा हि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बान-गामिनी ।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खु बुद्धस्स सावको ॥
सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये ॥ १६ ॥

लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण को ले जानेवाला दूसरा। इसे इस प्रकार जानकर बुद्ध का अनुगामी भिक्षु-शिष्य सत्कार की इच्छा न करे, विवेक और एकान्त-वास की वृद्धि करे ॥ १६ ॥

६—परिडतवग्गो

भगवान् के आदेश से राध ब्राह्मण को, जो भिक्षुओं की सेवा करता था, सारिपुत्र ने प्रव्रजित किया। राध सारिपुत्र का अनन्य आज्ञाकारी हो गया। एक दिन भगवान् ने उसके संबंध में पूछा, तो सारिपुत्र ने कहा—"भन्ते ! राध आज्ञाकारी है, किसी दोष के कहने पर भी कभी क्रोध नहीं करता।" भगवान् ने राध की प्रशंसा करते हुए सभी भिक्षुओं को उपदेश किया—

निधीनं'व पवत्तारं यं पस्से वज्जदस्सिनं।
निग्गय्हवादिं मेधाविं तादिसं पण्डितं भजे।
तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो ॥ १ ॥

भूमि में गड़ी हुई निधियों के बतलानेवाले की तरह दोषों को दिखलानेवाले संयमी, मेधावी, पंडित की सेवा करना उचित है। क्योंकि ऐसे पंडित की सेवा और संग करने से लाभ ही होता है, हानि नहीं होती ॥ १ ॥

कोटागिरि में अस्सजी और पुनब्बसु नामक अग्रश्रावकों के दो शिष्य रहते थे जो नाना प्रकार के पापाचरण करके अपना खर्च चलाते थे। उनके साथ बहुत-से भिक्षु भी रहते थे। जेतवन में उनकी बात सुनकर भगवान् ने भिक्षुओं से वहाँ जाकर उन्हें सुमार्ग पर लाने का आदेश देते हुए कहा—

ओवदेय्यानुसासेय्य असब्भा च निवारये।
सतं हि सो पियो होति असतं होति अप्पियो ॥ २ ॥

जो सदुपदेश देता, सुमार्ग पर चलने का अनुशासन करता तथा असभ्य नीच कर्मों का निवारण करता है, वह सज्जनों को तो प्रिय होता है किंतु दुर्जनों को अप्रिय ॥ २ ॥

जेतवन में पुराने छन्न स्थविर सारिपुत्र और मौद्गल्यायन आदि अग्रश्रावकों को नये-नोखे कहकर कोंचा करते थे किंतु वे उनका हित

ही करते थे। छन्न के इस हीनाचरण को सुनकर भगवान् ने उन्हें उपदेश दिया—

न भजे पापके मित्ते न भजे पुरिसाधमे ।
भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पुरिसुत्तमे ॥ ३ ॥

पापी मित्रों और अधम पुरुषों का साथ न करना चाहिए। अच्छे मित्रों का साथ और उत्तम पुरुषों का सेवन करना चाहिए ॥ ३ ॥

कुक्कुटवती नगर का महाकप्पिन नामक राजा अपने अमात्यों और स्त्रियों-सहित चन्द्रभागा नदी के किनारे भगवान् के द्वारा प्रव्रजित हुआ किंतु जेतवन में उसकी शिकायत हुई कि वह रात-दिन राज्य-सुख की याद किया करता है। भगवान् ने कप्पिन को बुलाकर पूछा, तो उसने कहा—तथागत सब जानते हैं। तब भगवान् ने कप्पिन की धर्म-प्रीति की प्रशंसा करते हुए कहा—

धम्मपीती सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा ।
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो ॥ ४ ॥

धर्म-रस का पान करनेवाला प्रसन्न चित्त हो सुख-पूर्वक सोता है। पंडित जन सदा आर्य-सत्य का ज्ञान करानेवाले धर्म में ही रमण करते हैं ॥ ४ ॥

श्रावस्ती में एक सात वर्ष का बालक प्रव्रजित हुआ। एक दिन भिक्षाटन के लिए जाते हुए मार्ग में नहर से पानी ले जानेवाले, बाण बनाने वाले एवं पहिया बनानेवाले बढ़ई को देखकर उसे चेतना हुई कि जब निर्जीव चीजों को मनुष्य जैसा चाहते हैं, बना लेते हैं, तो मैं अपने चित्त को वश में क्यों नहीं कर सकता? विहार में आकर वह इसी का चिंतन करते हुए अनागामी हो गया। एक संध्या की धर्मसभा में जब उसकी चर्चा हुई, तो भगवान् ने कहा—

उदकं हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारुं नमयन्ति तच्छका अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥ ५ ॥

नहर वाले पानी को ले जाते हैं, बाण बनानेवाले बाण को सीधा

करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं और पंडित जन अपने आपको दमन करते हैं ॥ ५ ॥

जेतवन विहार में एक लकुण्टक भद्दिय स्थविर थे, जिनकी नाक और कान पकड़कर अल्पवयस्क श्रामनेर हिलाया करते थे और वह कभी क्रोध नहीं करते थे। एक दिन धर्मसभा में उनकी बात सुनकर भगवान् ने कहा—

सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥ ६ ॥

जैसे ठोस पहाड़ हवा से कम्पायमान नहीं होता, वैसे ही पंडित जन निन्दा और प्रशंसा से विचलित नहीं होते ॥ ६ ॥

पति-परित्यक्ता पुत्री से खिन्न काणमाता और काण को सदुपदेश देकर संप्रहर्षित और शांत कर देने के बाद भगवान् ने जेतवन की धर्म-सभा में कहा—

यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्नो अनाविलो।
एवं धम्मानि सुत्वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ॥ ७ ॥

जैसे गंभीर सरोवर शांत और स्वच्छ होता है, वैसे ही उपदेश सुनकर पंडितजन निर्मल, शांत और गंभीर हो जाते हैं ॥ ७ ॥

जेतवन विहार में भिक्षुओं की जूठन खानेवाले बहुत लोग थे, जो खाते और मस्ती काटते थे। एक दिन धर्मसभा में भिक्षुओं ने इसका जिक्र किया, तो भगवान् ने कहा—

सब्बत्थ वे सप्पुरिसा चजन्ति न कामकामा लपयन्ति सन्तो।
सुखेन फुट्ठा अथवा दुखेन न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति ॥ ८ ॥

सत्पुरुष सभी रागादि को त्याग देते हैं, वे काम-भोगों की बातें नहीं चलाते। सुख मिले या दुख, पंडित कभी विकार का प्रदर्शन नहीं करते ॥ ८ ॥

श्रावस्ती का एक उपासक प्रव्रजित हो गया। कुछ दिन बाद उसने अपने पुत्र को भी प्रव्रजित करा दिया। पति और पुत्र से रहित स्त्री भी

बाद में भिक्षुणियों के आश्रम में जा प्रव्रजित हो गई। इसे सुनकर भगवान् ने धर्मसभा में कहा—

न अत्तहेतू न परस्स हेतु न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं।
न इच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो
स सीलवा पञ्ञवा धम्मिको सिया ॥ ९ ॥

जो अपने लिए या दूसरों के लिए पुत्र, धन और राज्य नहीं चाहता और न अधर्म से अपनी उन्नति की इच्छा करता है, वही शीलवंत धार्मिक और प्रज्ञावान् होता है ॥ ९ ॥

एक दिन श्रावस्ती की एक गली के लोगों ने बारी-बारी से सारी रात अखंड धर्मोपदेश कराया। श्रोताओं में बहुत-से तो थोड़ी देर धर्म-श्रवण कर चले गये और कुछ वहीं बैठे-बैठे ऊँघने लगे, बहुत कम लोग सारी रात जगे। इसे सुन दूसरे दिन धर्मसभा में भगवान् ने कहा—

अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावति ॥ १० ॥
ये च खो सम्मदक्खाते धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं ॥ ११ ॥

मनुष्यों में पार जानेवाले जन थोड़े ही हैं। बाकी सब लोग तो किनारे ही किनारे दौड़ते रहते हैं। जो भलीभाँति उपदेश किये हुए धर्म के अनुसार आचरण करते हैं, वे ही इस मृत्यु-गृहीत अति दुस्तर संसार-सागर को पार करेंगे ॥ १०, ११ ॥

कोशल देश के सैकड़ों भिक्षु वर्षा-वास करके भगवान् के दर्शनार्थ जेतवन महाविहार में आकर एक ओर बैठ गये। उन्हें उपदेश देते हुए भगवान् ने कहा—

कण्हं धम्मं विप्पहाय सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकं आगम्म विवेके यत्थ दूरमं ॥ १२ ॥
तत्राभिरतिमिच्छेय्य हित्वा कामे अकिञ्चनो।
परियोदपेय्य अत्तानं चित्तक्लेसेहि पण्डितो ॥ १३ ॥

पंडितजन काले कर्मों को छोड़कर उजले कर्मों का अभ्यास करें। घर से बेघर हो दूर जा एकांत स्थान में वास करें। काम-भोगों को त्याग सर्वस्व-त्यागी बन वहीं रत रहने की इच्छा करें। पंडितजन सदा अपने चित्त के मलों को दूर करने में यत्नशील रहें ॥ १२, १३ ॥

येसं सम्बोधि-अङ्गेसु सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदान-पटिनिस्सग्गे अनुपादाय ये रता।
खीणासवा जुतीमन्तो ते लोके परिनिब्बुता ॥ १४ ॥

जिनका चित्त संबोधि-अंगों में भलिभाँति अभ्यस्त है, जो परिग्रह को परित्याग कर अपरिग्रह में रत हैं, ऐसे क्षीण-आसव द्युतिमान् पुरुष ही लोक में निर्वाण-लाभ कर चुके हैं ॥ १४ ॥

७—अर्हन्तवग्गो

देवदत्त ने भगवान् को मारने के इरादे से राजगृह के गृद्धकूट पर्वत से एक भारी पत्थर गिराया, जो एक उभरी हुई चट्टान में टकराकर रुक गया किंतु उसकी एक चिप्पी उखड़कर भगवान् के चरण में लगी, जिससे खून निकल पड़ा। भगवान् जब नीचे जीवक के आम्रवन में आये, तो जीवक ने एक तेज दवा बाँध दी और बोला—"भन्ते! मैं एक रोगी को देखने जा रहा हूँ, मेरे आने तक इसे ऐसी ही बँधी रहने दीजिएगा।" किंतु जीवक रात में नगर-द्वार बंद हो जाने तक नहीं लौटा, तो भगवान् ने पट्टी खोलवा दी। प्रातः जीवक दौड़ा हुआ आया और प्रणाम करके खिन्न-चित्त बोला—"रात में भगवान् को बड़ा कष्ट हुआ होगा?" भगवान् ने कहा—

गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि।
सब्बगन्थप्पहीणस्य परिलाहो न विज्जति ॥ १ ॥

जो सारा रास्ता पार करके ठिकाने पर पहुँच गया है, जो शोक-

रहित और सर्वथा विमुक्त है, जिसकी सभी गुत्थियाँ सुलझ गई हैं, उसको कभी कोई कष्ट नहीं होता ॥ १ ॥

राजगृह के वेणुवन विहार से चारिका के लिए जब भगवान् जाने लगे, तो महाकाश्यप को विहार में ही रहने का आदेश किया। इस पर भिक्षुओं ने कहा—"राजगृह के निवासियों में काश्यप के बहुत-से संबंधी और सेवक हैं।" यह सुन भगवान् ने यह कहकर कि 'मेरा पुत्र सरोवर में विचरण कर उड़ जानेवाले राजहंस के समान अनासक्त है' उपदेश किया—

उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते।
हंसा'व पल्ललं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते ॥ २ ॥

जो स्मृतिवान् पुरुष ध्यान-विपश्यना में निरत हैं, वे गृह-सुख में नहीं रमते। वे तो क्षुद्र सरोवर को त्यागकर चले जानेवाले हंस की तरह घर को छोड़कर चले जाते हैं ॥ २ ॥

जेतवन बिहार में बेलट्ठिसीस स्थविर को रोज भिक्षाटन के लिए जाना अखरता था, अतः वह कुछ सूखा भोजन रख छोड़ते और ध्यान-भावना में कई दिन निरत रहकर जब जरूरत होती, खा लेते थे। इसे जान भिक्षु लोग चबाव करने लगे। इस पर भगवान् ने कहा—

येसं सन्निचयो नत्थि ये परिञ्ञातभोजना।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो येसं गोचरो।
आकासे'व सकुन्तानं गति तेसं दुरन्नया ॥ ३ ॥

जो संचय नहीं करते, जिन्हें भोजन की उचित मात्रा का ज्ञान है, तथा शून्यता-रूप और कारण-रहित निर्वाण जिनके गोचर है, उनकी गति आकाश में उड़नेवाले पक्षियों की भाँति अज्ञेय है ॥ ३ ॥

राजगृह के वेणुवन में बिहार करते समय एक स्त्री ने एक दिन नगर में घूमकर यह घोषणा कर दी कि आज भिक्षुगण भिक्षाटन नहीं करेंगे, विहार में ही दान पहुँचाना चाहिए। अतः दोपहर में विहार में बहुत अधिक भोजन आ गया। इसे देख कई भिक्षु परस्पर कहने

लगे कि "क्या अनुरुद्ध ने यह दिखाने के लिए इतना भोजन मँगा लिया है कि उनके बहुत-से संबंधी नगर में रहते हैं।" यह सुन भगवान् ने कहा—

यस्सा'सवा परिक्खीणा आहारे च अनिस्सितो ।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।
आकासे'व सकुन्तानं पदं तस्स दुरन्नयं ॥ ४ ॥

जिनके आसव क्षीण हो गये हैं, जो आहार में आसक्त नहीं हैं, शून्यता-रूप और कारण-रहित निर्वाण जिनके गोचर है, उन स्थविरों की गति आकाश में उड़नेवाले पक्षियों की तरह अज्ञेय है ॥ ४ ॥

श्रावस्ती के पूर्वाराम विहार में मृगारमाता के प्रासाद के नीचे महाप्रवारणा के दिन इंद्र भी सपरिवार धर्म-श्रवण के लिए आये थे। इंद्र ने उस सभा में विराजमान महाकात्यायन स्थविर को चरण छूकर प्रणाम किया। यह देख भिक्षुगण परस्पर कहने लगे—"इतने महास्थविरों के रहते इंद्र महाकात्यायन को ही पूजता है।" इसे सुन भगवान् ने कहा—

यस्सिन्द्रियाणि समथं गतानि, अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता ।
पहीनमानस्स अनासवस्स, देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो ॥ ५ ॥

सारथी द्वारा सुशिक्षित घोड़े की भाँति जिसकी इंद्रियाँ शांत हो गई हैं, जिसका अहंकार नष्ट हो गया है और जो आश्रव-रहित है, ऐसे अर्हंत् महापुरुष की देवता भी स्पृहा करते हैं ॥ ५ ॥

जेतवन विहार में एक भिक्षु ने भगवान् से शिकायत की कि सारिपुत्र स्थविर उसे कनपटी तोड़ने की तरह मारकर बिना क्षमा माँगे चले गये। भगवान् ने सारिपुत्र को बुलाकर पूछा, तो उन्होंने कहा—"भन्ते! जैसे पृथिवी न अशुचि फेंकने से घृणा करती है और न शुचि फेकने से आनंदित होती है, वैसे ही जिसे कायगता-स्मृति उपस्थित होती है, वह पृथिवी की भाँति अकम्प होता है। वह एक ब्रह्मचारी को कैसे मार सकता है?" यह सुन वह भिक्षु रोता-आँसू बहाता

भगवान् के चरणों पर गिर पड़ा। किंतु भगवान् ने उसे सारिपुत्र से क्षमा माँगने को कहा। वह अभी भगवान् के पैरों पर पड़ा ही था कि सारिपुत्र स्थविर घुटने टेक, दोनों हाथ जोड़कर, बोले—"भन्ते! मैं आयुष्मान् के दोष को क्षमा करता हूँ, और मुझसे जो दोष हुआ हो, आयुष्मान् मुझे क्षमा करे।" सारिपुत्र की इस क्षमाशीलता और क्रोध-हीनता की सभी भिक्षु प्रशंसा करने लगे। इस पर भगवान् ने कहा—

पठवीसमो नो विरुज्झति इन्दखीलूपमो तादि सुब्बतो।
रहदो'व अपेत कद्दमो संसारा न भवन्ति तादिनो ॥ ६॥

सुन्दर व्रतधारी तादि-अर्हत् पुरुष पृथिवी की भाँति क्षुब्ध नहीं होता, वह इन्द्रखील की तरह अकम्प होता है। ऐसे स्थिर पुरुष में कर्दम-रहित निर्मल सरोवर की भाँति संसार-मल नहीं रहता ॥ ६ ॥

कौशाम्बी के तिस्स-स्थविर अपने बालक-शिष्य श्रामनेर के साथ भगवान् के दर्शनार्थ श्रावस्ती आ रहे थे। मार्ग में एक विहार में ठहरे, तो श्रामनेर को अपने ही पास सो रहने की आज्ञा देकर स्थविर सो गये। किंतु स्थविर के पास सोना उचित न समझ श्रामनेर ने एक किनारे बैठकर ही सारी रात बिता दी। प्रातः स्थविर ने उसे बैठे देख क्रोध से पंखा चलाकर मारा जिससे उसकी एक आँख फूट गई। किंतु वह एक हाथ से आँख दबाये स्थविर का सारा काम करता रहा। जब गरम पानी के साथ दातून देने लगा, तो स्थविर को आँख फूटने का हाल मालूम हुआ और उसने श्रामनेर से क्षमा माँगी। श्रामनेर ने क्षमा करते हुए कहा—"इसमें आपका नहीं, संसार-चक्र का दोष है।" स्थविर पश्चात्ताप करते हुए भगवान् के पास आये, तो श्रामनेर की प्रशंसा करते हुए बोले—"भन्ते! इसने आँख फूटने पर भी मेरे ऊपर क्रोध नहीं किया।" इस पर यह समझाते हुए कि "क्षीणासव पुरुष क्रोध नहीं करते, अपितु शांत-मन रहते हैं" भगवान् ने कहा—

सन्तं तस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च।
सम्मदञ्ञाविमुत्तस्स उपसन्तस्स तादिनो ॥ ७॥

यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हुए उपशान्त अर्हत् पुरुष का मन शान्त होता है, उसकी वाणी और कर्म भी शांत होते हैं ॥ ७ ॥

जेतवन विहार में एक दिन तीस आरण्यक भिक्षु आये और वंदना करके भगवान् के एक ओर बैठ गये। भगवान् उस समय सारिपुत्र से पंचेन्द्रिय-संबंधी प्रश्नोत्तर कर रहे थे। इसे सुन उन भिक्षुओं को कुछ संदेह हुआ, तब भगवान् ने कहा—

अस्सद्धो अकतञ्ञू च सन्धिच्छेदो च यो नरो ।
हतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसो ॥ ८ ॥

जो अन्ध-श्रद्धा से रहित है, जिसने अकृत निर्वाण को जान लिया है, जिसने सांसारिक बंधनों को काट दिया है, जिसने विषय-भोग भावना का दमन कर दिया है और जिसको अब पुनर्जन्म का अवकाश नहीं है, वही उत्तम पुरुष है ॥ ८ ॥

सारिपुत्र के छोटे भाई रैवत स्थविर ब्याह के बाद ही विरक्त हो गये और आरण्यक भिक्षुओं द्वारा प्रव्रजित हो खदिरवन में चले गये। वहाँ वज्रचित्त से उद्योग करके उन्होंने प्रतिसम्भिदाओं सहित अर्हत्व लाभ किया। एक बार वर्षावास समाप्त करके भगवान् आ० सारिपुत्र आदि स्थविरों के साथ वहाँ गये तो रैवत ने भगवान् के स्वागत के लिए अपने ऋद्धिबल से उस वन में एक रमणीक बिहार बना दिया। भगवान् एक मास वहाँ निवास करके जब लौटे, तो दो भिक्षुओं के उपाहन और जलपात्र वहीं छूट गये। मार्ग से लौटकर वे भिक्षु वहाँ उन्हें लेने गये, तो उन्होंने देखा, सारा वासस्थान दुर्गम कंटकाकीर्ण है। श्रावस्ती लौटने पर जब भिक्षु लोग महोपासिका विशाखा के घर यवागू लेने गये तो उसने पूछा—"स्थविर रैवत का वासस्थान कैसा है?" इसके उत्तर में किसी भिक्षु ने कहा—"दुर्गम कंठकाकीर्ण" और किसी ने कहा—"सुधर्मा देवसभा के समान सुन्दर।" इन उत्तरों को सुनकर विशाखा को आश्चर्य हुआ। उसने भगवान् से पूछा, तो भगवान् ने गम्भीर भाव से कहा—

गामे वा यदि वा रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं ॥ ९ ॥

गाँव हो या वन, भूमि नीची हो या ऊँची, जहाँ कहीं अर्हत् विहार करते हैं, वह भूमि रमणीय ही होती है ॥ ९ ॥

एक पिण्डवासिक भिक्षु भगवान् से कम्मट्ठान ग्रहण कर किसी उद्यान में जाकर साधना करने लगे। संयोग से श्रावस्ती की एक वेश्या किसी पुरुष से उसी उद्यान में मिलने का वादा करके वहाँ गई। किंतु वह पुरुष वहाँ नहीं मिला, तब वेश्या इधर-उधर घूमती उन भिक्षु के निकट पहुँची और उन्हें मोहित करने के लिए हाव-भाव दिखाने लगी। उसके इस आचरण से भिक्षु को धर्म-संवेग उत्पन्न हुआ। जब यह समाचार गंधकुटी में विराजमान भगवान् के पास पहुँचा, तो उन्होंने कहा—

रमणीयानि अरञ्ञानि यत्थ न रमते जनो।
वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥ १० ॥

वह वन जहाँ साधारण जन निवास नहीं करते, वहाँ वीतराग पुरुष ही रमण करते हैं, क्योंकि वे काम-भोगों के पीछे दौड़नेवाले नहीं होते ॥ १० ॥

८—सहस्सवग्गो

राजगृह के वेणुवन में तम्बदाठिक नाम का एक चोरघातक रहता था। उसने अंतिम जीवन में एक दिन स्थविर सारिपुत्र को दूध में बना यवागू पिलाया, तो स्थविर ने उसके दान का अनुमोदन किया। इससे उसे स्रोतापन्न फल की प्राप्ति हुई। भिक्षुओं के पूछने पर भगवान् ने कहा—

सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता।
एकं अत्थपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ १ ॥

व्यर्थ के पदों से युक्त हजारों वाक्यों से सार्थक एक वाक्य श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शान्ति प्राप्त हो ॥ १ ॥

जेतवन विहार में एक दिन दारुचीरिय नामक एक वल्कलधारी साधु आया। भगवान् उस समय भिक्षाटन के लिए नगर गये थे। भिक्षुओं से पूछकर वह भी भगवान् को ढूँढने नगर गया, तो एक गली में उसे भगवान् के दर्शन हुए। उसने प्रणाम कर शास्ता से वहीं उपदेश देने की प्रार्थना की। भगवान् ने उसे खड़े-खड़े उपदेश दिया, जिसे सुनकर उसका चित्त निर्मल हो गया। भिक्षुओं के पूछने पर भगवान् ने कहा—

सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसंहिता।
एकं गाथापदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ २ ॥

व्यर्थ के पदों से युक्त हजारों गाथाओं की अपेक्षा एक गाथा श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शान्ति लाभ हो ॥ २ ॥

राजगृह की रहनेवाली एक परिव्राजिका को लोग इसलिए 'जम्बू' कहते थे क्योंकि वह जामुन की शाखा गाड़कर लोगों से कहती कि जो मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सके, इसे उखाड़ ले। एक दिन स्थविर सारिपुत्र से उसका सामना हो गया। तो स्थविर ने उसके प्रश्नों के उत्तर देकर एक प्रश्न अपना जड़ दिया जिसका उत्तर वह न दे सकी और स्वयं स्थविर से उसका उत्तर पूछने लगी। सारिपुत्र ने उसे भिक्षुणी संघ में प्रव्रजित होने का उपदेश दिया। जब उसने प्रव्रज्या ली, तो उसका नाम 'कुण्डलकेशी' रखा गया और ध्यान-भावना करके वह शीघ्र अर्हत्व को प्राप्त हुई। उसके संबंध में भिक्षुओं के पूछने पर भगवान् ने कहा—

यो च गाथा सतं भासे अनत्थपदसंहिता।
एकं धम्मपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ ३ ॥
यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥ ४ ॥

अनर्थ-पदों से युक्त सौ गाथाएँ गाने की अपेक्षा धर्म से पूर्ण एक

पद श्रेष्ठ है जिसे सुनकर शान्ति प्राप्त हो। संग्राम में हजारों-हजारों मनुष्यों को जीतनेवाले की अपेक्षा वह जयी कहीं अच्छा है जो अपने आपको जीत ले ॥ ३, ४ ॥

जेतवन में एक दिन एक जुआड़ी ब्राह्मण आया। भगवान् के जीत-हार का हाल पूछने पर उसने कहा—"कभी जीत होती है और कभी हार।" भगवान् ने कहा—

अत्ता हवे जितं सेय्यो या चायं इतरा पजा।
अत्तदन्तस्स पोसस्स निच्चं सञ्ञतचारिनो ॥ ५ ॥
नेव देवो न गंधब्बो न मारो सह ब्रह्मुना।
जितं अपजितं कयिरा तथारूपस्स जन्तुनो ॥ ६ ॥

दूसरों को जीतने की अपेक्षा स्वयं अपने को जीतना श्रेष्ठ है। जो अपने आपको दमन करके नित्य अपने को संयम में रखता है, ऐसे पुरुष को देवता, गंधर्व, ब्रह्मा और मार कोई नहीं जीत सकते ॥ ५,६ ॥

स्थविर सारिपुत्र का मामा रोज हजार रुपये व्यय करके अग्निहोत्र करता था। एक दिन सारिपुत्र उसे भगवान् के पास ब्रह्मलोक जाने का मार्ग पूछने के लिए वेणुवन में ले गये, तो भगवान् ने कहा—

मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सतं समं।
एकञ्च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥ ७ ॥

यदि एक मनुष्य हज़ार दक्षिणाएँ दे महीने-महीने सौ वर्ष तक यज्ञ करता है और दूसरा मनुष्य किसी विशुद्ध-मनवाले पुरुष की मुहूर्त्त भर भी पूजा करता है, तो सौ वर्ष के हवन से वह मुहूर्त्त भर की पूजा कहीं अधिक श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

स्थविर सारिपुत्र का भांजा ब्रह्मलोक जाने के लिए हर महीने एक पशु-वध करके अग्निहोत्र करता था। एक दिन स्थविर उसे भी ब्रह्मलोक का रास्ता जानने के लिए भगवान् के पास वेणुवन में ले आये, तो भगवान् ने कहा—

यो च वस्ससतं जन्तु अग्गिं परिचरे वने ।
एकं च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥ ८ ॥

यदि एक मनुष्य सौ वर्ष तक वन में अग्निहोत्र करे और दूसरा मनुष्य किसी विशुद्ध-मनवाले पुरुष की मुहूर्त भर भी पूजा करे, तो सौ वर्ष के अग्निहोत्र से वह पूजा कहीं अधिक श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥

सारिपुत्र एक दिन अपने एक याज्ञिक मित्र को भगवान् के पास वेणुवन में ले आये, तो भगवान् ने कहा—

यं किंचि यिट्ठं च हुतं च लोके संवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो ।
सब्बम्पि तं न चतुभागमेति अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो ॥ ९ ॥

पुण्य की इच्छा से यदि कोई मनुष्य साल भर नाना प्रकार के यज्ञ करे तो भी वह सरल चित्त पुरुष को किये गये अभिवादन के चतुर्थांश के बराबर भी नहीं है ॥ ९ ॥

अरण्यकुटी में भगवान् ने एक दिन एक ब्राह्मण-कुमार की, जो सात दिन के अखंड परित्राण-पाठ से दीर्घायु हुआ था, चर्चा होने पर कहा—

अभिवादनसीलिस्स निच्चं बद्धापचायिनो ।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं ॥ १० ॥

जो अभिवादन-शील है, जो सदा वृद्धों की सेवा करता है, उसकी चार बातें बढ़ती हैं—आयु, वर्ण, सुख और बल ॥ १० ॥

संकिच्च (सांकृत्य) श्रामनेर सात वर्ष की आयु में प्रव्रजित हुआ और उत्साह-पूर्वक ध्यान-भावना में निरत हो उसने प्रतिसम्भिदाओं के साथ अर्हत्व प्राप्त कर लिया। सारिपुत्र के आदेश से वह उन तीस भिक्षुओं के साथ गया, जो जेतवन में भगवान् के पास कर्मस्थान ग्रहण कर साधना के लिए अरण्यवासी हुए थे। एक दिन वन में चोरों का एक गरोह आया और देवता को बलि देने के लिए उसने एक भिक्षु को माँगा, तो संकिच्च श्रामनेर उनके साथ गया। जिस समय चोरों

का नेता श्रामनेर को बलि के लिए देवता के सामने लाया, तो संकिच्च ध्यान-समापन्न हो निश्चल बैठ गया। चोर-नेता ने जब उस पर पूर्ण शक्ति से तलवार का प्रहार किया, तो श्रामनेर के वज्रवत् शरीर पर लगकर तलवार टेढ़ी हो गई। श्राश्चर्य-चकित हो चोर-नेता श्रामनेर के पैरों पर गिरकर क्षमा माँगने लगा। संकिच्च ने क्षमा-दान पूर्वक दस शील देकर उत्सुक चोरों को प्रव्रजित किया तथा उन प्रव्रजितों को साथ ले वह क्रमशः चलकर भगवान् के पास जेतवन-विहार में श्राया। भगवान् ने सारी कथा सुन उन नव-प्रव्रजितों को संबोधन कर पूछा, तुम्हें वह चोरी का जीवन पसंद था कि यह शील-संपन्न नव जीवन? उत्तर में "यह जीवन" कहने पर भगवान् ने कहा—

यो च वस्ससतं जीवे दुस्सीलो असमाहितो।
एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तस्स झायिनो ॥ ११ ॥

दुःशील श्रौर चित्त की एकाग्रता से रहित मनुष्य के सौ वर्ष के जीवन से शीलवान् श्रौर ध्यानी पुरुष का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥

खाणु (स्थाणु) कोण्डञ्ञ स्थविर अर्हत्व लाभकर भगवान् के दर्शनार्थ जेतवन आ रहे थे। मार्ग में एक पत्थर की चट्टान पर बैठकर ध्यान-समधिस्थ हो गये। रात में चोरों का एक गरोह किसी गाँव को लूट माल की गठरी बाँधे वहाँ श्राया, श्रौर समाहित स्थविर को पत्थर का टीला समझ उनके ऊपर माल-असबाब रख सो रहा। सबेरे जब माल उठाकर चोर चलने को हुए, तो स्थविर भी उठे। चोर उन्हें प्रेत समझ चिल्लाकर भागने लगे। स्थविर बोले—"उपासको! डरो मत, मैं भिक्षु हूँ।" चोर लौटे श्रौर स्थविर के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगी। स्थविर ने क्षमा कर शीलों का उपदेश दे उन्हें संप्रहर्षित श्रौर उन्नत कर प्रव्रजित कर दिया श्रौर सबको साथ लेकर वे भगवान् के पास श्राये। भगवान् ने इन नवागत भिक्षुश्रों की कथा सुन इनसे पूछा—"तुम्हें पहलेवाला चोरी का जीवन पसंद था या यह शील-सम्पन्न नवजीवन?" सबों के एकस्वर से "यह जीवन" कहने पर भगवान् ने कहा—

योच वस्ससतं जीवे दुप्पञ्ञो असमाहितो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पञ्ञावन्तस्स झायिनो ॥ १२ ॥

दुष्प्रज्ञ और असमाहित अर्थात् चंचल-चित्त मनुष्य के सौ वर्ष के जीवन की अपेक्षा प्रज्ञावान् और ध्यान-भावना-निरत पुरुष का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

सप्पदास स्थविर प्रव्रज्या के बाद जब स्थित-चित्त नहीं हुए, तो मर जाने का प्रयत्न करने लगे। एक दिन साँप से डसाकर मर जाने का यत्न किया, किंतु असफल रहे। फिर नापित के छुरे को ले जेतवन के बाहर चले गये और एक वृक्ष के सहारे खड़े हो छुरा चलाने को उद्यत हुए, तो उन्हें उपसंपदा के दिन से अब तक अपना शील विशुद्ध दिखाई दिया, जिससे प्रीति उत्पन्न हुई और चित्त विपश्यना की ओर धावमान होते ही वहीं खड़े-खड़े उन्हें अर्हत्व लाभ हो गया। जब यह बात भगवान् तक पहुँची, तो भगवान् ने कहा—

यो च वस्ससतं जीवे कुसीतो हीनवीरियो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो विरियमारभतो दळ्हं ॥ १३ ॥

आलसी और उद्योग-हीन के सौ वर्ष के जीवन से दृढ़तापूर्वक उद्योग करनेवाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

श्रावस्ती में एक स्त्री के दो पुत्र और पति, तीनो मर गये, फिर उसके माता-पिता और भाई भी मर गये और उनकी लाशें एक ही चिता पर फुँकते देख वह स्त्री शोक से पगली हो नंगी इधर-उधर घूमने लगी। एक दिन वह जेतवन-विहार में घुसने लगी, तो लोगों ने उसे रोकना चाहा, किंतु भगवान् ने मना किया। वह सीधे भगवान् के पास पहुँची, तो दर्शन से ही उसे होश आ गया और लज्जा से घुटने टेक सिर को उसने घुटनों में लगा लिया। यह देख एक पुरुष ने उसे एक वस्त्र दिया जिसे पहन उसने भगवान् के चरणों का पंचांग प्रणाम किया। भगवान् ने उसे उपदेश दे भिक्षुणियों के पास भेज प्रव्रजित करा दिया। भिक्षुणियों ने उसका नाम 'पटाचारा' रख दिया। एक दिन

पटाचारा पानी से पैर धो पंच-स्कंधों की उत्पत्ति और विनाश पर मनन करने लगी। यह सुन भगवान् ने उसकी उद्योगशीलता का समर्थन करते हुए भिक्षुओं से कहा—

योो च वस्ससतं जीवे अपस्सं उदयव्ययं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयव्ययं ॥ १४ ॥

पंच-स्कन्धों की उत्पत्ति और विनाश को न देखनेवाले के सौ वर्ष के जीवन से उत्पत्ति और विनाश को देखनेवाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

श्रावस्ती के एक धनिक सेठ की लड़की किसा गोतमी का एक मात्र गोद का बच्चा मर गया। वह मृत बच्चे को गोद में ले जिलानेवाले वैद्य को खोजती हुई भगवान् के पास पहुँची। भगवान् ने उसे दुखित देख कहा—"क्या तुम मंत्र पढ़ने के लिए किसी ऐसे घर से थोड़े सरसों ला सकती हो, जिसमें कोई मरा न हो?" आतुर गोतमी ढूँढने गई, पर उसे कोई घर ऐसा न मिला जिसमें कोई मरा न हो। वह निराश हो भगवान् के पास आई। भगवान् ने संसार की अनित्यता को दिखाते हुए उसे उपदेश दिया, जिससे वह स्रोतापन्न फल को प्राप्त हुई और उसने प्रव्रजित होने की कामना प्रकट की। भगवान् ने उसे भिक्षुणियों के पास भेज प्रव्रजित करा दिया। एक दिन किसा गोतमी उपोसथ-गृह में दीप जलाने गई, तो दीपक की उठती और बुझती लौ को देख उत्पत्ति और विनाश का मनन करती हुई पश्यंती हो गई। यह सुन भगवान् ने उसकी भावना का समर्थन करते हुए से कहा—

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं अमतं पदं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो अमतं पदं ॥ १५ ॥

अमृत-पद निर्वाण को न देखनेवाले के सौ वर्ष के जीवन अमृत-पद के देखनेवाले का एक दिन का जीना श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥

श्रावस्ती में एक स्त्री के सात पुत्र और सात पुत्रियाँ थीं। पति के मर जाने पर उसके पुत्र उसका अनादर करने लगे, तो वह भिक्षुणियों

के पास जाकर प्रव्रजित हो गई और उसका नाम 'बहुपुत्रिका' रखा गया। बुढ़ापे में प्रव्रजित होने के कारण उसका मन सदा श्रमण-धर्म में लगा रहता था। इसे सुन भगवान् ने उसकी धर्मदर्शिता की प्रशंसा करते हुए धर्मसभा में कहा—

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं धम्ममुत्तमं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो धम्ममुत्तमं॥ १६॥

उत्तम धर्म को न देखनेवाले के सौ वर्ष के जीवन से उत्तम धर्म के देखनेवाले के जीवन का एक दिन श्रेष्ठ है॥ १६॥

९—पापवग्गो

श्रावस्ती में चूल एकसाटक ब्राह्मण के पास एक चादर थी, जिसे भगवान् को देने की भावना उसके मन में आई। किंतु फिर मोह हो गया। फिर दान की इच्छा हुई और फिर मोह हुआ। वह सारा दिन इसी उधेड़-बुन में रहा। अंत में उस चादर को भगवान् के चरणों पर रख उसने "मैं जीता, मैं जीता" कहा। राजा प्रसेनजित् ने इस कथन का कारण पुछवाया। जब सब बात मालूम हुई, तो प्रसन्न हो राजा ने उस ब्राह्मण को क्रमशः बत्तीस जोड़े कपड़े दिये, जिनमें से दो जोड़े अपने पास रख शेष सब उसने भगवान् को दान कर दिये। इस पर भगवान् ने कहा—

अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये।
दन्धं हि करोतो पुञ्ञं पापस्मिं रमते मनो॥ १॥

शुभ कर्म करने में शीघ्रता करे, मन से पापों को हटावे। पुण्य कर्म में ढील करनेवाले का मन विचलित हो पाप में लग जाता है॥ १॥

फिर भगवान् ने सेय्यसक स्थविर को उपदेश देते हुए कहा—

पापञ्चे पुरिसो कयिरा न तं कयिरा पुनप्पुनं।
न तम्हि छन्दं कयिराथ दुक्खो पापस्स उच्चयो॥ २॥

यदि मनुष्य कभी कोई पाप कर डाले, तो उसे बार-बार न करे और न उसमें रत होवे । क्योंकि पाप का संचय दुख का कारण होता है ॥ २ ॥

इसी प्रकार लाजदेव की कन्या को उपदेश देते हुए भगवान् ने कहा—

पुञ्ञञ्चे पुरिसो कयिरा कयिराथेतं पुनप्पुनं ।
तम्हि छन्दं कयिराथ सुखो पुञ्ञस्स उच्चयो ॥ ३ ॥

यदि मनुष्य पुण्य करे, तो उसे बार-बार करता रहे और उसमें रत होवे । क्योंकि पुण्य का संचय सुखदायक होता है ॥ ३ ॥

जेतवन में अनाथपिण्डिक सेठ के चौथे द्वार पर एक भूदेव रहता था । एक दिन उसने सेठ से कहा—"गृहपति ! दान करने में तुम्हारा सारा धन खत्म हो गया और तुम निर्धन हो गये । अब अपना शेष धन भिक्षुओं को दान न करके व्यापार में लगाओ ।" इसे सुन सेठ ने डाँटते हुए उस भूदेव को घर से निकाल दिया । किंतु नगर में जब उसे रहने के लिए कहीं ऐसा सुन्दर स्थान न मिला, तो वह फिर अनाथपिण्डिक के पास आया और क्षमा-याचना की । अनाथपिण्डिक क्षमा देकर उसे भगवान् के पास ले गये । भगवान् ने सब सुनकर उपदेश किया—

पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति ।
यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति ॥ ४ ॥
भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति ।
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्राणि पस्सति ॥ ५ ॥

पापी भी तब तक पाप को अच्छा देखता है जब तक उसे पाप का फल नहीं मिलता, किंतु जब पाप का फल मिलता है, तब उसे पाप बुरा दिखाई देने लगता है । इसी तरह जब तक पुण्य का फल नहीं मिलता तब तक पुण्यात्मा भी पुण्य को अच्छा नहीं समझता, किंतु जब पुण्य का फल मिलता है, तब उसे पुण्य अच्छा दिखाई देने लगता है ॥ ४, ५ ॥

इसी प्रकार जेतवन में एक असंयमी भिक्षु को उपदेश देते हुए भगवान् ने कहा—

मावमञ्ञेथ पापस्स न मन्तं आगमिस्सति ।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।
बालो पूरति पापस्स थोक-थोकम्पि आचिनं ॥ ६ ॥

'वह मेरे पास नहीं आयेगा' ऐसा सोच कभी पाप की अवहेलना न करे। बूँद-बूँद पानी गिरने से जैसे घड़ा भर जाता है, ऐसे ही थोड़ा-थोड़ा संचय करके मूर्ख पाप को इकट्ठा कर लेता है ॥ ६ ॥

फिर श्रावस्ती के बिलालपाद सेठ को भगवान् ने उपदेश दिया—

मावमञ्ञेथ पुञ्ञस्स न मन्तं आगमिस्सति ।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।
धीरो पूरति पुञ्ञस्स थोक-थोकम्पि आचिनं ॥ ७ ॥

'वह मेरे पास नहीं आयेगा' ऐसा सोच कभी पुण्य की अवहेलना न करे। बूँद-बूँद पानी गिरने से जैसे घड़ा भर जाता है, वैसे ही थोड़ा-थोड़ा संचय करके धीर पुरुष पुण्य को भर लेता है ॥ ७ ॥

श्रावस्ती का महाधन नामक वणिक् जब व्यापार के लिए बैल-गाड़ियों पर माल लादकर बाहर जाने को हुआ, तो उसने भिक्षुओं से कहा—जिन्हें अमुक देश चलना हो, वे मेरे साथ चलें, मार्ग में भोजन मैं दूँगा। यह सुन बहुत-से भिक्षु उसके साथ हो लिये। किंतु महाधन जब नगर से कुछ दूर गया, तो चोर लोग उसे देखकर जंगल के दोनों ओर छिप गये। यह जान सेठ आगे नहीं बढ़ा और भिक्षुओं से कहा—"भन्ते! आगे जाने से हम लूट लिये जायँगे, अतः आप लोग कुछ दिन यहीं ठहरें।" किंतु अधिक ठहरना उचित न समझ भिक्षुगण श्रावस्ती लौट आये और उन्होंने लौटने का सब हाल भगवान् को सुना दिया। भगवान् ने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा—

वाणिजो'व भयं मग्गं अप्पसत्थो महद्धनो ।
विसं जीवितुकामो'व पापानि परिवज्जये ॥ ८ ॥

थोड़ा काफिला और बहुत धनवाला व्यापारी जैसे भय-युक्त मार्ग को छोड़ देता है, अथवा जैसे जीने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य विष को त्याग देता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि पापों को छोड़ दे ॥ ८ ॥

राजगृह के एक सेठ की कन्या भगवान् के उपदेश सुनकर स्रोतापन्न हुई, किंतु जवानी में कुक्कुटमित्त निषाद पर मोहित हो उसके साथ चुपके से चली गई। कुक्कुटमित्त वन में जाल फैला मृगों को पकड़कर जीविका चलाता था। इस प्रकार रहते हुए उसके सात पुत्र हुए। एक दिन भगवान् उस वन से गये। संयोग से उस दिन जाल में एक भी मृग नहीं फँसा था। कुक्कुटमित्त भगवान् को देख यह समझा कि इन्होंने जाल में फँसे मृगों को खोल दिया है, इसलिए भगवान् को मारने के लिए उसने धनुष-बाण उठाया और उसके पुत्र भी दौड़े। इसी बीच सेठ-कन्या आई और उसने चिल्लाकर कहा—"अरे! ये हमारे पिता हैं, इन्हें मत मारो।" यह सुन निषाद बहुत लज्जित हुए और उन्होंने भगवान् से क्षमा माँगी। क्षमा दान करके भगवान् ने उन्हें उपदेश दिया, जिससे उन्हें स्रोतापन्न फल की प्राप्ति हुई। इस पर भिक्षुओं ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! निषाद को आजीवन धनुष-बाण देकर प्राणातिपात में सहायता करनेवाली सेठ-कन्या स्रोतापन्न कैसे रही?" भगवान् ने यह समझाते हुए कि सेठ-कन्या केवल अपने पति की आज्ञा का पालन करती थी, स्वयं पाप नहीं करती थी, कहा—

पाणिम्हि चे वणो नास्स हरेय्य पाणिना विसं।
नाब्बणं विसमन्वेति नत्थि पापं अकुब्बतो ॥ ९ ॥

यदि हाथ में घाव न हो तो हाथ में विष ले लेने से, घाव-रहित हाथ होने के कारण, शरीर में विष नहीं चढ़ता। इसी प्रकार न करने वाले को पाप नहीं लगता ॥ ९ ॥

श्रावस्ती में कोक नामक कुत्ते के शिकारी ने कुत्तों के साथ जाते हुए सबेरे पिंडिपात्र लिये एक भिक्षु को देखा। वह दिन भर जंगल में घूमा,

पर उसे कुछ नहीं मिला। शाम को घर आते हुए उसे फिर वही भिक्षु मिला, तो क्रोध से उसने कहा—"सबेरे इस अभागे भिक्षु को देखने के कारण ही मुझे आज कुछ नहीं मिला। इसे कुत्तों से कटवाकर मार डालूँगा।" यह कहकर उसने कुत्तों को ललकारा। कुत्तों को आते देख भिक्षु एक वृक्ष पर चढ़ गया। कुत्ते वृक्ष को चारो ओर से घेर कर भूँकने लगे। तब कोक ने भिक्षु के पैरों में तीर मारा। तीर से व्यथित भिक्षु का चीवर नीचे कोक के ऊपर गिर पड़ा। कुत्तों ने समझा कि भूमि पर भिक्षु गिरा है, उन्होंने चीवर से ढके कोक को ही काटकर मार डाला। तब भिक्षु ने एक सूखी डाल तोड़ नीचे उतर कुत्तों को मार भगाया, और चीवर ओढ़ भगवान् के पास आ प्रणामकर सारी कथा कह सुनाई। भगवान् ने कहा—

यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स ।
तमेव बालं पच्चेति पापं सुखुमो रजो पटिवातं'व खित्तो ॥ १० ॥

जो दोष-रहित, शुद्ध, निर्मल पुरुष को दोष लगाता है, उस मूर्ख को ही उसका पाप लौटकर लगता है। जैसे हवा के विरुद्ध फेंकी हुई सूक्ष्म धूलि फेंकनेवाले पर ही पड़ती है ॥ १० ॥

श्रावस्ती में कुलूपग नामक एक मणिकार था। उसके यहाँ तिस्स स्थविर बारह साल से भोजन करते थे। एक दिन मणिकार एक मांस-खंड को काट रहा था, उसी समय कोसल-नरेश के यहाँ से साफ़ करने के लिए एक मणि आई। कुलूपग खून लगे हाथ से मणि ले भूमि पर रख हाथ धोने चला गया। इसी समय उसका पालतू क्रौंच पक्षी आया और मणि को निगल गया। मणिकार ने लौटकर जब मणि को नहीं पाया, तो स्थविर पर संदेह किया, किंतु उसकी स्त्री ने कहा, ऐसा मत सोचो। दूसरे दिन जब स्थविर आये, तो उसने मणि को पूछा। स्थविर के इनकार करने पर उसने उन्हें रस्सी से बाँध इधर-उधर घुमाया। स्थविर मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े, उनके नाक-कान और सिर से खून बहने लगा। खून बहता देख क्रौंच आया। क्रोधित मणिकार ने

उसे भी मार डाला। जब स्थविर को होश आये और उन्होंने क्रौंच को भी मरा देखा, तब कहा—"उपासक! मणि को यह पक्षी निगल गया था।" कुछ दिन बाद स्थविर उसी रोग से परिनिर्वृत हुए, क्रौंच मणिकार के घर उत्पन्न हुआ, मणिकार मरकर नरक को गया तथा उसकी स्त्री स्वर्ग में गई। भिक्षुओं ने उनकी गति के संबंध में भगवान् से पूछा, तो भगवान् ने कहा—

गब्भमेके उप्पज्जन्ति निरयं पापकम्मिनो।
सग्गं सुगतिनो यन्ति परिनिब्बन्ति अनासवा॥ ११॥

कोई गर्भ में उत्पन्न होते हैं, कोई पाप-कर्म करनेवाले नरक में जाते हैं, कोई सुगतिवाले स्वर्ग को जाते हैं, और जो चित्त-मलों से रहित हैं, वे परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं॥ ११॥

जेतवन में विहार करते समय बहुत-से भिक्षु भगवान् के दर्शनार्थ आये और प्रणाम करके भगवान् से पूछा—"भन्ते! क्या पाप-कर्म करके आकाश में उड़कर, समुद्र में डूबकर या पर्वत-गुफाओं में प्रवेश करके मनुष्य नहीं बच सकता?" भगवान् ने उत्तर दिया—

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे न पब्बतानं विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो यत्थट्ठितो मुञ्चेय्य पापकम्मा॥ १२॥

न आकाश में, न समुद्र की तह में, न पर्वतों के विवर में प्रवेश करके, संसार में कहीं भी कोई ऐसी जगह नहीं है जहाँ रहकर मनुष्य पाप-कर्मों के फल-भोग से बच सके॥ १२॥

भगवान् के कपिलवस्तु के निग्रोधाराम में विहरते समय सुप्पबुद्ध शाक्य ने कहा—"यह मेरी पुत्री को अनाथा करके चला गया, मैं इसे नगर में नहीं घुसने दूँगा।" और उसने भगवान् को नगर में नहीं जाने दिया। तब भगवान् ने आ० आनन्द से कहा—"आनन्द! सुप्पबुद्ध सातवें दिन प्रासाद की सीढ़ी के पास गिरकर मर जायगा।" ऐसा ही हुआ। सातवें दिन सुप्पबुद्ध भूमि में धँसकर मर गया। तब भगवान् ने कहा—

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो यत्थट्ठितं न प्पसहेय्य मच्चू ॥ १३॥

न आकाश में, न समुद्र की तह में, न पर्वतों के विवर में—संसार में कहीं भी कोई ऐसी जगह नहीं है, जहाँ रहनेवाला मृत्यु से बच सके ॥ १३ ॥

१०—दण्डवग्गो

जेतवन-विहार में एक बार छःवर्गीय भिक्षुओं ने सत्रहवर्गीय भिक्षुओं को किसी भूल के लिए दण्ड देते हुए मारा । जब यह मामला भगवान् के सामने पेश हुआ, तो भगवान् ने मारने का निषेध करते हुए कहा—

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥ १ ॥

दण्ड से सभी डरते तथा मृत्यु से सभी भय खाते हैं । इसलिए सभी को अपने समान समझकर न किसी को मारे, न मारने की प्रेरणा करे ॥ १ ॥

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥ २ ॥

दण्ड से सभी डरते हैं, जीवन सब को प्रिय है । इसलिए सभी को अपने समान समझकर न किसी को मारे और न मारने की प्रेरणा करे ॥ २ ॥

एक बार जेतवन से श्रावस्ती जाते हुए भगवान् ने बहुत-से लड़कों को एक साँप को लाठी से पीटते देखकर उन्हें उपदेश दिया—

सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति ।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं ॥ ३ ॥
सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति ।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुखं ॥ ४ ॥

सुख चाहनेवाले दूसरे प्राणियों को जो अपने सुख की कामना से

डंडे से मारता है, वह मारकर सुख नहीं पाता। जो अपने सुख की कामना से सुख चाहनेवाले दूसरे प्राणियों को नहीं मारता, वह मरकर सुख पाता है ॥ ३,४ ॥

जेतवन में कुण्डधान स्थविर को कोई कुछ कहता, तो वह उससे भिड़ पड़ते और उसको बुरा-भला कहने लगते । जब यह बात भगवान् तक पहुँची, तो उन्हें बुलाकर उपदेश देते हुए भगवान् ने कहा—

मा वोच फरुसं कञ्चि वुत्ता पटिवदेय्यु तं ।
दुक्खा हि सारम्भकथा पटिदण्डा फुसेय्यु तं ॥ ५ ॥
स चे नेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा ।
एस पत्तोसि निब्बाणं सारम्भो ते न विज्जति ॥ ६ ॥

कठोर वचन मत बोलो । कठोर बोलने पर दूसरे भी तुमसे वैसा ही बोलेंगे । प्रतिवाद में दुर्वचन दुखदायक होता है, उसके बदले तुम्हें दण्ड मिलेगा । यदि तुम अपने को टूटे हुए काँसे की तरह निःशब्द बना लोगे, तो समझो तुमने निर्वाण पा लिया, तुम्हारे लिए कलह शेष नहीं रहा ॥ ५,६ ॥

श्रावस्ती के पूर्वाराम-विहार में उपोसथ के दिन महोपासिका विशाखा भगवान् के पास उन स्त्रियों को लेकर आई जो नाना प्रकार की सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए उपोसथ कर रही थीं। भगवान् ने उन्हें उपदेश देते हुए कहा—

यथा दण्डेन गोपालो गावो पाचेति गोचरं ।
एवं जरा च मच्चू च आयुं पाचेन्ति पाणिनं ॥ ७ ॥

(जो निर्वाण से विमुख हैं) उन प्राणियों की आयु बुढ़ापा और मृत्यु उसी तरह ले जाते हैं जैसे ग्वाला लाठी से हाँककर गायों को चरागाह में ले जाता है ॥ ७ ॥

राजगृह के गृद्धकूट पर्वत से नीचे उतरते समय महामोग्गलायन और लक्खण स्थविर ने एक बहुत बड़े अजगर को देखा, जिसके सिर से अग्नि की लपटें उठकर दुम की ओर और दुम की ओर से चारो

ओर फैलती थीं। वेणुवन-विहार में आ स्थविरों ने भोजनोपरांत यह बात जब भगवान् को सुनाई, तो भगवान् ने बताया—"इस अजगर प्रेत ने पूर्व-जन्म में एक सेठ का घर सात बार जलाया था, और कश्यप बुद्ध की कुटी को भी फूँक दिया था। उस पाप-कर्म के कारण बहुत दिन नरक में रहकर अब इस दुर्गति को प्राप्त हुआ है।" यह बताकर उपदेश देते हुए भगवान् ने कहा—

अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो अग्गिदड्ढो'व तप्पति ॥ ८ ॥

पाप-कर्म करते समय मूढ़ मनुष्य उसे नहीं बूझता है। पीछे दुर्बुद्धि अपने उन्हीं कर्मों के कारण आग से जलते हुए की तरह तपता है ॥ ८ ॥

भगवान् के वेणुवन-विहार में रहते समय तैर्थिकों ने बहुत-से चोरों के द्वारा बालशिखा पर्वत की गुहा में ध्यान-समाधि में निरत स्थविर महामोग्गलायन को मरवा डाला। यह समाचार पा राजा अजातशत्रु ने गुप्तचरों की सहायता से उन चोरों और तैर्थिकों को पकड़वा मँगाया और उन्हें कमर तक ज़मीन में गड़वाकर जीवित ही जलवा दिया। भिक्षुओं ने जब यह सारा समाचार भगवान् को सुनाया, तो भगवान् ने बताया—महामोग्गलायन ने पूर्व-जन्म में अपने अन्धे माता-पिता को मारकर जंगल में फेंक दिया था, उस पाप के अनुरूप उन्हें यह मृत्यु-दण्ड मिला और चोरों व तैर्थिकों ने जैसा किया उसका फल उन्हें इसी जन्म में मिल गया। निर्दोष को दोष लगानेवाले दस तरह से विपत्ति भोगते हैं—

यो दण्डेन अदण्डेसु अप्पदुट्ठेसु दुस्सति।
दसन्नमञ्ञतरं ठानं खिप्पमेव निगच्छति ॥ ९ ॥
वेदनं फरुसं जानिं सरीरस्स च भेदनं।
गरुकं वापि आबाधं चित्तक्खेपं व पापुणे ॥ १० ॥
राजतो वा उपस्सग्गं अब्भक्खानं व दारुणं।
परिक्खयं व ञातीनं भोगानं व पभङ्गुणं ॥ ११ ॥

अथवस्स अगारानि अग्गी डहति पावको ।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो निरयं सोपपज्जति ॥ १२ ॥

जो दण्ड-रहितों को दण्ड से पीड़ित करता है अथवा निर्दोषों को दोष लगाता है, उसे इन दस बातों में कोई एक बात शीघ्र ही भोगनी पड़ती है—(१) कठोर वेदना, (२) हानि, (३) अंग-भंग होना, (४) भारी बीमारी, (५) चित्त-विक्षेप अर्थात् पागल हो जाना, (६) राज-दण्ड, (७) दारुण निन्दा, (८) जाति-बंधुओं का विनाश, (९) भोगों का क्षय, (१०) घर में आग लग जाना। और शरीर छूटने पर वह दुर्बुद्धि नरक में उत्पन्न होता है ॥ ९, १०, ११, १२ ॥

जेतवन-विहार में एक बहुभांडिक अर्थात् बहुत सामान रखनेवाला भिक्षु था, जो बहुत सामान रखता था। एक दिन भगवान् ने उससे कहा—"भिक्षु को बहु-संग्रही नहीं होना चाहिए।" इस पर रुष्ट हो चीवर और संघाटी उतार केवल अंतरवासक पहने वह भिक्षु सभा के बीच खड़ा हो बोला—"भन्ते ! क्या ऐसे रहना ठीक है?" उस समय भगवान् ने देवधम्म-जातक सुनाकर कहा—

न नग्गचरिया न जटा न पङ्का नानासका थण्डिलसायिका वा ।
रजोवजल्लं उक्कुटिकप्पधानं सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं ॥१३॥

जिसकी आकांक्षाएँ या संदेह समाप्त नहीं हुए हैं, उस व्यक्ति की शुद्धि न नंगे रहने से, न जटा बढ़ाने से, न कीचड़ लपेटने से, न उपवास करने से, न कड़ी भूमि पर सोने से, न धूल या भस्म मलने से और न उकड़ूँ बैठने से किसी प्रकार नहीं हो सकती ॥ १३ ॥

कोसल-नरेश प्रसेनजित् का महामात्य संतति वस्त्राभूषण से अलंकृत हो हाथी पर चढ़कर जा रहा था। नगर-द्वार पर भगवान् को देख उसने सिर हिलाकर प्रणाम किया। भगवान् मुसकुराये और पूछने पर आनंद को बताया, यह आज ही अर्हत्व को प्राप्त हो निर्वृत होगा। संतति महामात्य स्नानघाट पर दिन बिता जब संध्या को अपने उद्यान में नृत्य देख रहा था कि नाचती-गाती उसकी नर्तकी मर गई।

इससे शोक-संतप्त हो वह भगवान् के पास गया। भगवान् के दिव्य उपदेश के अंत में वह वहीं वस्त्राभूषण से अलंकृत अर्हत्व को प्राप्त हो पालथी लगा जलकर परिनिर्वृत हो गया। एक दिन भिक्षुओं ने पूछा—"भन्ते! सन्तति महामात्य अलंकृत ही निर्वृत हो गया, तो उसे श्रमण समझना चाहिए या ब्राह्मण?" भगवान् ने कहा—

अलङ्कतो चेपि समं चरेय्य सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी ।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू ॥१४॥

वस्त्राभूषण से अलंकृत रहते हुए भी मनुष्य यदि शान्त, दान्त, नियम में तत्पर, ब्रह्मचारी और समस्त प्राणियों के प्रति दण्ड-त्यागी है, तो वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है और वही भिक्षु है ॥ १४ ॥

एक दिन स्थविर आनन्द ने कपाल हाथ में लिये एक पिलोतिक (लँगोटी-धारी) लड़के को देखा। इच्छा प्रकट करने पर स्थविर आनंद ने उसे प्रव्रजित किया और उसकी लँगोटी व कपाल को एक वृक्ष पर टाँग दिया। कुछ दिनों बाद लड़का भिक्षु-चर्या से उदास हो फिर लँगोटी-धारी और कपाली बनने के इरादे से उस वृक्ष के पास गया। किंतु विरति हो जाने से लौट आया। वह कई बार इसी तरह जाता और लौटता रहा। भिक्षु जब पूछते—कहाँ जाते हो? तो कहता—"आचार्य के पास।" एक दिन उसे उस लँगोटी और कपाल से पूर्ण विरति हो गई और वह उन्हें अंतिम नमस्कार कर लौट आया, और फिर नहीं गया। भिक्षुओं ने पूछा—"क्या अब आचार्य के पास नहीं जाते हो?" उसने कहा—"अब आचार्य से मेरा संसर्ग छूट गया।" यह सब बात मालूम होने पर भगवान् ने भिक्षुओं को बताया—"भिक्षुओं! मेरे पुत्र को अब संसर्ग नहीं है, उसने अर्हत्व को प्राप्त कर लिया है।" यह कहकर भगवान् ने कहा—

हिरी निसेधो पुरिसो कोचि लोकस्मिं विज्जति ।
यो निन्दं अप्पबोधति अस्सो भद्रो कसामिव ॥ १५ ॥

अस्सो यथा भद्रो कसानिविट्ठो आतापिनो संवेगिनो भवाथ ।

सद्धाय सीलेन च वीरियेन च समाधिना धम्मविनिच्छयेन च ।
सम्पन्नविज्जाचरणा पतिस्सता पहस्सथा दुक्खमिदं अनप्पकं ॥१६॥

लोक में कोई ऐसे पुरुष होते हैं, जो अपने आप लज्जा करके निषिद्ध कर्म नहीं करते। जैसे उत्तम घोड़ा कोड़े को बरदाश्त नहीं करता, वैसे ही वह निन्दा को नहीं सह सकते ॥ १५ ॥

और कई ऐसे होते हैं जो कोड़े पड़े उत्तम घोड़े की तरह उद्योगी, ग्लानियुक्त, संवेगवान् हो, श्रद्धा, आचार, वीर्य, समाधि और धर्म-निश्चय से युक्त तथा विद्या और आचरण से समन्वित एवं स्मृतिवान् हो इस महान् दुःखसागर को पार कर लेते हैं ॥ १६ ॥

एक बार भगवान् ने सुख श्रामनेर को भी पंडित श्रामनेर की तरह बताया—

उदकं हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारुं नमयन्ति तच्छका अत्तानं दमयन्ति सुब्बता ॥१७॥

नहरवाले पानी को ले लाते हैं, बाण बनानेवाले बाण को सीधा करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करता है और सुव्रती जन अपने चित्त का दमन करते हैं ॥ १७ ॥

११—जरावग्गो

एक दिन जेतवन-विहार में विशाखा उपासिका के साथ कुछ स्त्रियाँ सुरा-पान करके धर्म-श्रवण करने आईं। उपदेश सुनते हुए उनमें से कई सुरा-मद से मस्त हो उठकर नाचने-गाने-हँसने-ताली बजाने लगीं। भगवान् ने उनकी यह दशा देख अपने ऋद्धिबल से वहाँ अंधकार कर दिया। इससे वे भयभीत हो गईं। तब भगवान् ने कहा—"तुम लोगों को मेरे पास अप्रमत्त होकर आना चाहिए और राग आदि को शमन करने का प्रयत्न करना चाहिए।" इस प्रकार उपदेश देते हुए भगवान् ने कहा—

कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति ।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥ १ ॥

सब कुछ तो जल रहा है। तुम्हें यह हँसी कैसी ? और आनंद कैसा ? घोर अंधकार से घिरी हुई भी तुम प्रज्ञा-रूपी प्रदीप को क्यों नहीं ढूँढ़ती हो ? ॥ १ ॥

राजगृह में सिरिमा नामक एक अत्यंत सुन्दर गणिका थी, वह भगवान् का उपदेश सुनकर स्रोतापन्न फल को प्राप्त हुई और प्रतिदिन भिक्षु-भोजन कराने लगी। एक दिन वह सहसा मर गई, तो राजा ने श्मशान में तीन दिन उसकी लाश को वैसे ही रखवा दिया। तीसरे दिन भगवान् भिक्षु-संघ के साथ वहाँ गये, तो उसके मृत शरीर को विकृत, बीभत्स और दुर्गन्ध-युक्त दिखाकर भिक्षुओं से बोले—

पस्स चित्तकतं बिम्बं अरुकायं समुस्सितं ।
आतुरं बहुसङ्कप्पं यस्स नत्थि धुवं ठिति ॥ २ ॥

इस चित्रित शरीर को देखो, जो व्रणों से युक्त, फूला, पीड़ित तथा नाना कामनाओं, संकल्पों और चिंताओं से युक्त है और जिसकी स्थिति अनित्य है ॥ २ ॥

वृद्धा उत्तरी थेरी को भिक्षाटन करते देख भगवान् ने कहा—

परिजिण्णमिदं रूपं रोगनिड्डं पभङ्गुरं ।
भिज्जती पूतिसन्देहो मरणन्तं हि जीवितं ॥ ३ ॥

यह शरीर रूप-जीर्ण, रोगों का घर और भंगुर है। सड़कर विनाश को प्राप्त होता है। मर जाना ही जीवन का अन्त है ॥ ३ ॥

काया-रति-अभिलाषी अधिमान भिक्षु को श्मशान का दृश्य दिखाकर भगवान् ने कहा—

यानि'मानि अपत्थानि अलाबूनेव सारदे ।
कापोतकानि अट्ठीनि तानि दिस्वान का रति ॥ ४ ॥

शरद् काल की सड़ी लौकी की तरह फेंकी गई अथवा कपोतों की भाँति सफेद हो गई हड्डियों को देखकर इस शरीर में रति कैसी ? ॥ ४ ॥

रूपनंदा थेरी बड़ी सुन्दर थी। वह भगवान् के सामने इस भय से नहीं आती थी कि भगवान् रूप को अनित्य, दुःख और अनात्म बतावेंगे। एक दिन भिक्षुणियों के बहुत कहने पर वह जेतवन-विहार में आई और भगवान् को प्रणाम करके एक ओर बैठ गई। उसकी मनोभावना को जान भगवान् ने अपने ऋद्धिबल से एक अत्यंत सुन्दरी तरुणी बनाई, जो भगवान् के पीछे खड़ी चँवर डुला रही थी। इस तरुणी को भगवान् और रूपनंदा के सिवा और कोई नहीं देखता था। रूपनंदा उसके सौंदर्य को टकटकी बाँधे देख रही थी कि उसके देखते-देखते वह स्त्री वृद्धा और जरा-जीर्ण होकर मर गई। यह दृश्य देखकर उसे विराग उत्पन्न हो गया। तब भगवान् ने उपदेश देते हुए कहा—

अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहितलेपनं।
यत्थ जरा च मच्चू च मानो मक्खो च ओहितो ॥ ५ ॥

यह शरीर हड्डियों का एक नगर बनाया गया है, जो मांस और रक्त से तोपा हुआ है। इसमें जरा, मृत्यु, अभिमान और डाह छिपे हुए हैं ॥ ५ ॥

कोसल-नरेश की प्रिय रानी मल्लिका के मरने के बाद भगवान् उनके यहाँ गये, तो राजा उन्हें रथशाला में ले गया। भोजनोपरान्त राजा ने अपनी भार्या के लिए शोक प्रकाश करते हुए उसकी गति के संबंध में पूछा, तो भगवान् ने रथशाला के रथों को दिखाते हुए कहा—

जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता अथो सरीरम्पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति ॥ ६ ॥

जैसे राजा के सुचित्रित राज-रथ पुराने हो जाते हैं, वैसे ही यह शरीर भी पुराना हो जाता है। केवल सन्तों का धर्म ही पुराना नहीं होता। सन्तों के धर्म के बारे में सत्पुरुष ऐसा ही कहते हैं ॥ ६ ॥

लालुदायी स्थविर उपासकों के घर जाकर सूत्रों का उल्टा-पुल्टा पाठ करते थे। इसकी शिकायत पहुँचने पर भगवान् ने उसकी अल्पज्ञता के संबंध में कहा—

अप्पस्सुतायं पुरिसो बलिवद्दो'व जीरति ।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति पञ्ञा तस्स न वड्ढति ॥ ७ ॥

अल्प-श्रुत मनुष्य बैल की तरह जीर्ण होता है। उसका मांस तो बढ़ता है किन्तु उसकी प्रज्ञा नहीं बढ़ती ॥ ७ ॥

आनन्द स्थविर के पूछने पर भगवान् ने अपने उन उदान-वचनों को सुनाया जिन्हें सम्यक् संबोधि लाभ होने पर बोधि-वृक्ष के नीचे बैठे हुए भगवान् ने कहा था—

अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं ।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं ॥ ८ ॥
गहकारक ! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि ।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्खितं ।
विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा ॥ ९ ॥

इस काया-रूपी गृह के बनानेवाले गृहकारक को ढूँढते हुए मैं अनेक जन्मों तक लगातार संसार में दौड़ता रहा और बार-बार दुःख-रूप जन्म-मरण में पड़ता रहा। हे (तृष्णा-रूप) गृहकारक! मैंने तुझे देख लिया। अब फिर तू घर नहीं बना पावेगा। तेरी सभी कड़ियाँ भग्न हो गईं। गृह का शिखर भी बिखर गया। चित्त संस्कार-रहित हुआ और तृष्णाओं का क्षय हो गया ॥ ८, ९ ॥

काशी में एक बड़े धनवान् सेठ का लड़का अपनी स्त्री-सहित दिन-रात नाच-गाने में डूबा रहता था। वह कुसंग में पड़कर शराब भी पीने लगा। गाने-बजाने-नाचने और शराब पीने में वह ऐसा दीवाना हुआ कि अपना सारा धन घर-द्वार सब स्वाहा करके दाने-दाने को मोहताज हो भीख माँगने लगा। एक दिन वह ऋषिपत्तन के मृगदाव-विहार में अपनी स्त्री-सहित श्रामनेरों द्वारा फेकी हुई जूठन लेने गया। उसे देखकर मुसकराते हुए भगवान् ने आयुष्मान् आनंद से कहा—

अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं ।
जिण्णकोंचा'व झायन्ति खीणमच्छे'व पल्लले ॥ १० ॥

जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया, जिन्होंने जवानी में धन नहीं कमाया, वे मनुष्य मछलियों से रहित तालाब में डूबे क्रौंच पक्षी की तरह बुढ़ापे में चिंता को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बणे धनं ।
सेन्ति चापातिखीणा'व पुराणानि अनुत्थुनं ॥ ११ ॥

जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया और जवानी में धन नहीं कमाया, वे मनुष्य बुढ़ापे में धनुष से छोड़े गये बाण की तरह अपनी पुरानी बातों के गीत गाते हुए पछताते रहते हैं ॥ ११ ॥

१२—अत्तवग्गो

संसुमारगिरि (भेसकलावन) के राजकुमार बोधि ने अपना एक महल बनवाकर गृह-प्रवेश मंगल के दिन भगवान् को निमंत्रित किया। भगवान् स्थविर आनंद के साथ भोजन करने गये। राजकुमार निःसंतान थे। भोजनोपरान्त राजकुमार ने पुत्र-पुत्री न होने का कारण पूछा, तो भगवान् ने बताया—"पूर्व-जन्म में तुम स्त्री-पुरुष दोनो प्रमादी थे, किसी अवस्था में भी तुम अपने को सुरक्षित नहीं रखते थे। इस दोष के कारण तुम को पुत्र-पुत्री न होंगे।" यह कहकर भगवान् ने कहा—

अत्तानं चे पियं जञ्ञा रक्खेय्य तं सुरक्खितं ।
तिण्णमञ्ञतरं यामं पटिजग्गेय्य पण्डितो ॥ १ ॥

अपने को यदि प्रिय समझा है, तो अपने को सुरक्षित रखना चाहिए। पंडित पुरुष को चाहिए कि रात के तीनों यामों में से एक में जागरण अवश्य करे ॥ १ ॥

शाक्यपुत्र स्थविर उपनंद उपदेश देने में बड़े कुशल थे, किंतु स्वयं बड़े लोभी और संग्रही थे। विहारों में वर्षावास के नाम से कहीं अपना जूता, कहीं लाठी, कहीं जलपात्र आदि रख कई विहारों से वर्षावास के अंत में मिलनेवाले चीवर आदि ले लेते थे। एक बार दो तरुण भिक्षु

दो चीवर और एक कम्बल पाकर आपस में बाँट न सकने के कारण झगड़ रहे थे। उपनन्द वहाँ पहुँच दोनो को एक-एक चीवर दे, कम्बल निर्णायक के नाते स्वयं लेकर चल दिये। उन दोनो भिक्षुओं ने जेतवन-विहार में आकर भगवान् से शिकायत की, तो भगवान् ने उपनंद के आचरण की निंदा करते हुए कहा—

अत्तानं एव पठमं पटिरूपे निवेसये।
अथञ्ञमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो ॥ २ ॥

पहले अपने आप ही को उचित काम में लगावे, बाद में दूसरे को उपदेश दे। ऐसा करने से पंडित क्लेश को न प्राप्त होगा ॥ २ ॥

तिस्स स्थविर भगवान् से कर्मस्थान ग्रहण कर बहुत-से भिक्षुओं को साथ ले वन में वर्षावास के लिए गये। किंतु वहाँ भिक्षुओं को श्रमण-धर्म पालन करने का उपदेश देकर आप सो रहते थे। रात के तीनों पहरों में सब भिक्षुओं को कर्मस्थान के लिए जगाते और खुद सोते थे। इस तरह निद्रा न मिलने के कारण भिक्षु लोग चित्त को एकाग्र न कर सके। किसी को भी विशेष ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। वर्षावास समाप्त करके भिक्षु लोग जेतवन-विहार में आये और उन्होंने सब बात भगवान् से बताई, तो तिस्स स्थविर के आचरण की निंदा करते हुए भगवान् ने कहा—

अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्ञमनुसासति।
सुदन्तो वत दम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ॥ ३ ॥

दूसरों को जैसा उपदेश करना हो, पहले स्वयं अपने आप को वैसा बनावे। पहले अपने को भली भाँति दमन करके दूसरे का दमन करे। वस्तुतः अपने को दमन करना ही कठिन है ॥ ३ ॥

कश्यप स्थविर का जन्म एक भिक्षुणी-माता के पेट से हुआ था। जन्म के बाद से उनका पालन राजा प्रसेनजित् द्वारा हुआ। कश्यप बचपन ही में प्रव्रजित हो शीघ्र ही अर्हत्व को प्राप्त हुए। बारह वर्ष की आयु में वह एक बार अपनी माता के सम्मुख हुए, तो अपत्य-स्नेह से

माता के स्तनों से दूध टपकने लगा। कश्यप ने माता को ममता-रहित बनाने के विचार से माता से कहा—"क्या करते घूम रही हो? अब तक पुत्र-स्नेह को भी नहीं छोड़ सकीं।" कश्यप की इस बात से माँ का पुत्र-स्नेह ध्वंस हो गया और उसे उसी दिन अर्हत्व प्राप्त हो गया। जेतवन-विहार की धर्मसभा में इसकी चर्चा चलने पर भगवान् ने कश्यप की माता के स्वयं उद्योग से अर्हत्व पाने की सराहना करते हुए कहा—

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।
अत्तना'व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥ ४॥

मनुष्य अपना स्वामी अपने आप है। दूसरा कौन उसका स्वामी हो सकता है? अपने आप को भली भाँति दमन कर लेने पर वह दुर्लभ स्वामित्व को प्राप्त कर लेता है ॥ ४॥

श्रावस्ती का महाकाल उपासक जब स्रोतापन्न हुआ, तो महीने में आठ दिन सारी रात विहार में रहकर धर्म-श्रवण करता और सवेरे एक पोखरी में हाथ-मुँह धोकर घर आता था। एक रात चोर लोग चोरी का कुछ माल पोखरी के किनारे छोड़कर चले गये थे। सवेरे गाँववालों ने पोखरी के किनारे माल और नीचे उपासक को देख उसे ही चोर समझ मारकर वहीं डाल दिया। श्रामनेरों ने जब उपासक का मृत्यु-समाचार भगवान् को सुनाया, तो भगवान् ने बताया—"महाकाल ने पूर्व-जन्म में एक पुरुष की स्त्री पर मोहित हो उसे चोरी का दोष लगाकर मार डाला था। उसी पाप का उसे यह फल मिला।" यह बताकर भगवान् ने कहा—

अत्तना'व कतं पापं अत्तजं अत्तसम्भवं।
अभिमन्थति दुम्मेधं वजिरं' व'स्ममयं मणिं ॥ ५॥

अपने से पैदा हुआ, अपने से उत्पन्न, अपने से किया गया पाप दुर्बुद्धि मनुष्य को वैसे ही पीड़ित करता है जैसे पाषाणमय मणि को वज्र ॥ ५॥

वेणुवन-विहार की धर्मसभा में भिक्षुओं ने एक दिन देवदत्त के दुराचारों की चर्चा चलाई, तो भगवान् ने कहा—

यस्सच्चन्तदुस्सील्यं मालुवा सालमिवोततं ।
करोति सो तथत्तानं यथा'नं इच्छती दिसो ॥ ६ ॥

साखू के वृक्ष पर फैली मालुवा-लता की भाँति जिसका दुराचार फैला हुआ है, वह अपने लिए वैसा ही कर लेता है जैसा उसके शत्रु चाहते हैं ॥ ६ ॥

एक दिन देवदत्त ने भिक्षाटन करते हुए आनंद स्थविर से कहा—"मैं तुम्हारे भिक्षुसंघ से अलग हो उपोसथ तथा सांघिक कर्म करूँगा।" संघ में फूट डालने की यह बात सुनकर भगवान् ने कहा—

सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च ।
यं वे हितञ्च साधुञ्च तं वे परमदुक्करं ॥ ७ ॥

बुरे और अपने लिए अहितकर कामों का करना आसान है किंतु शुभ और हितकर कामों का करना बहुत कठिन है ॥ ७ ॥

श्रावस्ती की एक उपासिका को काल स्थविर इसलिए भगवान् के पास उपदेश सुनने के लिए नहीं जाने देते थे कि फिर उपासिका उनकी मान-पूजा कम करेगी। पड़ोसियों से प्रशंसा सुन उपासिका उपोसथ के दिन जेतवन-विहार में पहुँच भगवान् का उपदेश सुनने लगी, तो काल दौड़े हुए वहाँ गये और भगवान् से बोले—"भन्ते! यह मूर्खा है। इसे गंभीर धर्मोपदेश न देकर केवल दान और शील-संबंधी उपदेश दीजिए।" इस पर भगवान् ने कहा—

यो सासनं अरहतं अरियानं धम्मजीविनं ।
पटिक्कोसति दुम्मेधो दिट्ठिं निस्साय पापिकं ।
फलानि कट्ठकस्सेव अत्तहञ्ञाय फुल्लति ॥ ८ ॥

जो दुर्बुद्धि धर्म-व्यवसायी अपनी पापमयी भ्रान्त-धारणा का अनुयायी होने के कारण आर्य-अर्हतों के शासन की निन्दा करता है, वह बाँस के फल की भाँति स्वयं अपनी हत्या के लिए फूलता है ॥ ८ ॥

एक गाँव में चुल्लकाल उपासक को गाँव के लोग पीट रहे थे, तो पनिहारिनों ने उसे निर्दोष कहकर बचा लिया। भिक्षुओं ने यह बात भगवान् को सुनाई, तो भगवान् ने कहा—

अत्तना'व कतं पापं अत्तना संकिलिस्सति ।
अत्तना अकतं पापं अत्तना'व विसुज्झति ॥
सुद्धि असुद्धिपच्चत्तं नञ्ञो अञ्ञं विसोधये ॥ ६ ॥

अपना किया पाप अपने को मलिन करता है, अपना न किया पाप अपने को शुद्ध करता है। शुद्धि और अशुद्धि प्रत्येक व्यक्ति की अलग-अलग होती है। एक मनुष्य दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

भगवान् ने जब चार मास बाद अपने महापरिनिर्वाण की घोषणा की, तो भिक्षु लोग बड़े चिंतित हुए। अत्तदत्थ स्थविर भगवान् के रहते ही अर्हत्व प्राप्त कर लेने के लिए एकांत-वास करने लगे। यह सुन भगवान् ने अत्तदत्थ के आचरण की प्रशंसा करते हुए कहा—

अत्तदत्थं परत्थेन बहुनाऽपि न हापये ।
अत्तदत्थमभिञ्ञाय सदत्थपसुतो सिया ॥ १० ॥

पराये बहुत हित के लिए भी अपने हित की हानि न करना चाहिए। अपने हित की बात को समझकर अपने अर्थ के साधन में लग जाय ॥ १० ॥

———

१३—लोकवग्गो

विशाखा उपासिका की पुत्री एक अल्पवयस्क भिक्षु के लिए पानी छानते हुए पानी में अपने मुख की छाया देखकर हँसी। उसे हँसते देख भिक्षु भी हँसा, तो लड़की ने कहा—"मुंडी भी हँसता है।" इस पर उत्तेजित हो भिक्षु ने कहा—"तू मुंडी, तेरे माँ-बाप मुंडी।" लड़की रोती हुई अपनी माँ के पास गई। रोने का कारण पूछ विशाखा भिक्षु के पास आकर बोली—"भन्ते! आपको क्रोध नहीं करना चाहिए।" भिक्षु बोला—"उपासिके! क्या लड़की को किसी भिक्षु को 'मुंडो' कहना चाहिए?" यह विवाद चल ही रहा था कि वहाँ भगवान् आ गये। शास्ता ने सब विवाद सुन विशाखा से कहा—"उपासिके! क्या

लड़की द्वारा 'मुंडी' कहकर मेरे श्रावकों को आक्रोषित करना उचित है?" यह सुन शास्ता को अपने पक्ष में जान भिक्षु को ढाढ़स हुआ। तब भगवान् ने भिक्षु को समझाते हुए कहा—"काम-वासन के प्रति हँसना नीच कर्म है। किसी भिक्षु को नीच-धर्म का सेवन और आक्रोश नहीं करना चाहिए।" यह उपदेश दे भगवान् ने कहा—

हीनं धम्मं न सेवेय्य पमादेन न संवसे।
मिच्छादिट्ठिं न सेवेय्य न सिया लोकवड्ढनो ॥ १ ॥

नीच-धर्म का सेवन न करे, न प्रमाद से लिप्त रहे, न मिथ्या धारणा रखे और न लोक-वर्धक जन्म-मरण को बढ़ावे ॥ १ ॥

सम्यक् संबुद्ध होकर जब भगवान् पहली बार कपिलवस्तु गये, तो पहले दिन किसी ने उन्हें निमंत्रित नहीं किया। दूसरे दिन भगवान् भिक्षु-संघ के साथ पिण्डपात्र ले भिक्षाटन के लिए निकले। राहुल-माता ने महल में बैठे भगवान् को भिक्षाटन करते देख महाराज शुद्धोदन से कहा। शुद्धोदन जल्दी से भगवान् के पास पहुँचे और प्रणाम करके बोले—"पुत्र! जिस नगर में तुम स्वर्ण-पालकी पर विचरण करते थे, वहीं भिक्षा-पात्र ले भिक्षाटन करके तुमने मुझे अत्यन्त लज्जित कर दिया। क्या ऐसा तुम्हें उचित है?" भगवान् ने कहा—"महाराज! मैं आपको लज्जित नहीं कर रहा, बरन् अपने वंश की मर्यादा का पालन कर रहा हूँ।" महाराज बोले—"क्या पुत्र! भिक्षाटन करके जीना मेरे वंश की मर्यादा है?" भगवान् ने कहा—"महाराज! मैं अब आपके नहीं, बुद्ध-वंश में हूँ। मेरे पूर्वज हज़ारों बुद्ध भिक्षाटन करके ही जीवित रहे।" ऐसा कहकर भगवान् ने कहा—

उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥ २ ॥
धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥ ३ ॥

उठ पड़े, आलसी न बने और सुचरित धर्म का आचरण करे।

धर्मचारी पुरुष इस लोक और परलोक दोनों जगह सुख से रहता है। सुचरित-धर्म का ही आचरण करे, दुश्चरित कर्म का सेवन न करे। धर्मचारी लोक और परलोक दोनों जगह सुख से रहता है ॥ २, ३ ॥

जेतवन-विहार में बहुत-से भिक्षु भगवान् से कर्मस्थान ग्रहण कर साधना के लिए वन में गये किंतु विशेषता न मिलने पर फिर भगवान् के पास पहुँचे ही थे कि पानी बरसने लगा। वे बरामदे में खड़े हो गये और पानी में उठते-फूटते बुलबुलों को देख भावना करने लगे, इसी प्रकार शरीर भी उत्पन्न होकर नाश होता है। भगवान् ने गंधकुटी में बैठे हुए ही भिक्षुओं की इस भावना को देखकर कहा—

यथा बुब्बूलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं।
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति ॥ ४ ॥

जो पुरुष बुलबुले और मरु-मरीचिका के समान ही इस लोक को देखता है, उसकी ओर यमराज आँख उठाकर भी नहीं देखता ॥ ४ ॥

राजकुमार अभय जब सीमांत-देश विजय करके आया, तो महाराज बिम्बिसार ने प्रसन्न हो उसे एक उत्तम नर्तकी और एक सप्ताह के लिए राज्य दे दिया। राजकुमार सप्ताह भर प्रासाद से बाहर नहीं निकला। सातवें दिन नदी में स्नानकर अभय जब उद्यान गया, तो वहाँ उसकी नर्तकी मर गई। राजकुमार दुखित हो भगवान् के पास गया। भगवान् ने उसे धर्मोपदेश देकर कहा—

एथ पस्सथिमं लोकं चित्तं राजरथूपमं।
यत्थ बाला विसीदन्ति नत्थि सङ्गो विजानतं ॥ ५ ॥

आओ, और चित्रित रथ के समान इस संसार को देखो। मूढ़ मनुष्य ही इस पर आसक्त होते हैं; ज्ञानी पुरुषों को आसक्ति नहीं होती ॥ ५ ॥

सम्मुञ्जन स्थविर जेतवन-विहार में सारा दिन झाड़ू लगाया करते थे। एक दिन उन्हें रेवत स्थविर ने समझाया—"भिक्षु को सारा दिन झाड़ू न देकर भोजनोपरान्त किसी स्थान में बैठकर बत्तीस आकारों का पाठ करके शरीर के क्षय-व्यय को भी देखना चाहिए।" रेवत की बात

मानकर सम्मुञ्जन तदनुसार आचरण कर अर्हत्व को प्राप्त हो गये। किंतु विहार को गंदा देख भिक्षुओं ने भगवान् से सम्मुञ्जन के झाड़ू न देने की शिकायत की। भगवान् ने यह कहते हुए कि "मेरा पुत्र प्रमाद के समय झाड़ू देता था, अब मार्ग-फल के सुख में रहकर झाड़ू नहीं लगाता है" कहा—

यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति।
सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा ॥ ६ ॥

जो पहले भूल करके फिर भूल नहीं करता, वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोक को प्रकाशित करता है ॥ ६ ॥

अंगुलिमाल स्थविर के निर्वाण-प्राप्त हो जाने पर भिक्षुओं ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! इतने मनुष्यों की हत्या करके अंगुलिमाल परिनिर्वृत कैसे हुए?" इस पर भगवान् ने कहा—

यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिथीयति।
सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा ॥ ७ ॥

जिसका किया पाप-कर्म उसके पुण्य से बिलकुल ढक जाता है, वह इस लोक को मेघ से मुक्त चन्द्रमा के समान प्रकाशित करता है ॥ ७ ॥

एक तंतुवाय की सोलह वर्ष की लड़की आलवी के विहार में भगवान् का उपदेश सुनकर मृत्यु-स्मृति की भावना करने लगी। एक दिन भगवान् उस ग्राम में भोजनोपरांत जब पुण्यानुमोदन कर रहे थे, वह लड़की भी सूत की फेंटी की टोकरी एक ओर रख भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गई। भगवान् ने उससे पूछा—"कुमारिके! कहाँ से आ रही हो? कहाँ जाओगी?" लड़की ने कहा—"भन्ते! नहीं जानती।" भगवान् ने पूछा—"क्या नहीं जानती हो?" लड़की बोली—"भन्ते! जानती हूँ।" भगवान् ने फिर पूछा—"जानती हो?" लड़की ने कहा—"नहीं जानती।" इस प्रकार मनमाने उत्तर सुनकर ग्रामवासी उसपर नाराज होने लगे। तब भगवान् ने उसे उत्तरों को समझाने का आदेश किया। लड़की ने कहा—"भन्ते! मैं तंतुवा के घर पैदा हुई, यह जानती

हूँ, पर यह नहीं जानती कि कहाँ से आकर उत्पन्न हुई। मैं यह भी नहीं जानती कि मरकर कहाँ जाऊँगी। मैं यह जानती हूँ कि मुझे मरना है, पर यह नहीं जानती कि कब मरूँगी।" भगवान् ने उसके चारों उत्तरों के लिए साधुकार देते हुए लोगों को समझाया कि "तुम लोग प्रज्ञा-चक्षु न होने के कारण इसकी बात न समझकर नाराज हुए। जिन्हें प्रज्ञा-चक्षु नहीं है, वे अन्धे के समान हैं।" यह समझाकर भगवान् ने कहा—

अन्धभूतो अयं लोको तनुकेत्थ विपस्सति।
सकुन्तो जालमुत्तो'व अप्पो सग्गाय गच्छति ॥ ८ ॥

यह लोक अन्धे के सदृश है। यहाँ देखनेवाले बहुत कम हैं। जाल से मुक्त पक्षी की तरह विरले ही लोग स्वर्ग को जाते हैं ॥ ८ ॥

जेतवन-विहार में एक दिन दिशा-वासी तीस भिक्षु आये और गंधकुटी में भगवान् से वार्तालाप करने लगे। भिक्षुओं को भगवान् से वार्ता करते देख आनंद स्थविर भीतर न जाकर बाहर ही खड़े रहे। वे भिक्षु भगवान् के उपदेश से अर्हत्व पा आकाश-मार्ग से उड़कर चले गये। देर तक प्रतीक्षा करके आनंद स्थविर भीतर गये, तो वहाँ भिक्षुओं को न देख पूछा—"भन्ते! वे भिक्षुगण कहाँ गये?" भगवान् ने कहा—"वे आकाश-मार्ग से चले गये।" उस समय आकाश में हंस उड़ रहे थे। भगवान् ने उन हंसों की ओर इंगित करके कहा—

हंसादिच्चपथे यन्ति आकासे यन्ति इद्धिया।
नीयन्ति धीरा लोकम्हा जेत्वा मारं सवाहिणिं ॥ ९ ॥

हंस सूर्य-पथ (आकाश) में उड़ते हैं, योगी भी ऋद्धि-बल प्राप्त करके आकाश-मार्ग से जाते हैं और धीर पुरुष मार को सेना-सहित पराजित कर लोक से निर्वाण को चले जाते हैं ॥ ९ ॥

तैर्थिक लोग भगवान् और उनके संघ के बढ़ते हुए प्रभाव को नहीं देख सकते थे। उन्होंने भगवान् की अपकीर्ति करने के इरादे से चिंचा नामक एक तरुणी को सधाकर यह षड्यंत्र रचा कि चिंचा रोज़ संध्या

को जेतवन की ओर जाय और निकटवर्ती तैर्थिकों के आश्रम में रात बिताकर भोर में जेतवन से आने का ढोंग दिखावे। कोई पूछे तो कहे कि मैं रात को श्रमण गौतम के पास गंधकुटी में सोई थी। इस तरह नौ-दस महीने बिताकर एक दिन अपने पेट में काठ की कठौती बाँध, लाल कपड़े पहन, गर्भिणी का रूप बना, धर्मसभा में पहुँच चिंचा भगवान् के सामने खड़ी हो बोली—"महाश्रमण! आप यहाँ धर्मोपदेश कर रहे हो, और मेरे लिए आपने न तो प्रसूतिका-घर का प्रबंध किया और न घी-तेल आदि का। यदि आप स्वयं नहीं कर सकते, तो अपने सेवक प्रसेनजित्, अनाथपिण्डिक या विशाखा आदि किसी को कहिए कि मेरा प्रबंध करें। आप केवल संवास करना जानते हैं, गर्भ का परिहार करना नहीं जानते?"

भगवान् ने उपदेश रोककर कहा—"भगिनी! तूने जो कहा है, उसकी सत्यता को तू जानती है या मैं!"

चिंचा बोली—"हाँ श्रमण! मैं और आप तो जानते ही हैं, पर देखनेवालों ने भी मुझे रोज़ संध्या को गंधकुटी में आते और सवेरे घर जाते देखा है।"

इस अत्यंत घृणित मिथ्या आरोप से इंद्रासन हिल गया और धरती काँप उठी। अकस्मात् चार चूहे दौड़ते हुए आये और चिंचा की टाँगों से पेट पर चढ़ पेट के ऊपर बँधी रस्सी को उन्होंने काट दिया, और तेज़ हवा ने उसके वस्त्र को उड़ा दिया। पेट पर बँधी हुई काठ की कठौती चिंचा के पैरों पर गिरी, जिससे उसके अगले पैर कट गये। लोगों ने "छिः-छिः चंद्रमा पर धूल फेंकती है!" कहकर उसे सभा से बाहर निकाल दिया। भगवान् के नेत्रों से ओझल होते ही वह पृथिवी में धँस गई और मरकर अबीचि नामक महानरक में पड़ गई। दूसरे दिन धर्मसभा में उसकी चर्चा चलने पर भगवान् ने कहा—

एकं धम्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो।
वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ॥ १० ॥

जो सत्य-रूप धर्म का अतिक्रमण कर झूठ बोलता है, उस परलोक-चिंता से रहित पुरुष के लिए कोई पाप ऐसा नहीं रह जाता जिसे वह कर न सके ॥ १० ॥

एक दिन एक राजा ने भगवान् को अनुपम दान दिया, ऐसा बड़ा दान जिसे कोई न कर सके। दान चौदह करोड़ की लागत का था। उसे देख राजा का 'काल' नामक अमात्य चिंता में डूब गया कि भिक्षु लोग इस दान को खाकर सोयेंगे और राजकोष बरबाद हो जायगा। किन्तु दूसरा 'शुक्ल' नामक अमात्य इस दान से हर्षित हुआ। भगवान् इस महादान का केवल एक गाथा से अनुमोदन कर विहार चले गये। दूसरे दिन राजा ने विहार में जा भगवान् से विस्तार-पूर्वक अनुमोदन न करने का कारण पूछा, तो भगवान् ने बता दिया। तब राजा ने काल को राज्य से निर्वासित कर दिया और शुक्ल को एक सप्ताह के लिए राज्य सौंप इच्छानुरूप दान करने को कहा। इस पर भगवान् ने कहा—

न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति बाला हवे नप्पसंसन्ति दानं।
धीरो च दानं अनुमोदमानो तेनेव सो होति सुखी परत्थ ॥ ११ ॥

कंजूस लोग देवलोक नहीं जाते, मूर्ख जन दान की प्रशंसा नहीं करते। धैर्यवान् पुरुष ही दान का अनुमोदन कर उसी कर्म से परलोक में सुखी होते हैं ॥ ११ ॥

अनाथपिण्डिक सेठ का पुत्र काल धर्म-श्रवण करने नहीं जाता था। अनाथपिण्डिक ने उसे सौ कर्षापण देने का प्रलोभन देकर जेतवन भेजा, तो वहाँ जा वह सो रहा और सवेरे आया, तो बिना कर्षापण लिये भोजन नहीं किया। दूसरे दिन सेठ ने कहा—"आज कुछ याद करके आओगे, तो हज़ार कर्षापण दूँगा।" काल विहार में जाकर कुछ याद करने की भावना से जब भगवान् के सामने बैठा तो धर्म-श्रवण कर स्रोतापन्न हो गया और तीसरे दिन भगवान् के साथ ही घर आया। भोजनोपरांत जब अनाथपिण्डिक ने उसे हज़ार कर्षापणों को देना चाहा, तो उसने नहीं लिया। यह मालूम करके भगवान् ने कहा—

पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेन वा ।
सब्बलोकाधिपच्चेन सोतापत्तिफलं वरं ॥ १२ ॥

सारी पृथिवी का अकेला राजा होने से या स्वर्ग के गमन से अथवा सारे परलोक का स्वामी हो जाने से भी स्रोतापत्ति-फल श्रेष्ठ है ॥१२॥

१४—बुद्धवग्गो

एक बार भगवान् ने उरुबेला (बोधिमंड) में मागन्दिय ब्राह्मण को वह उपदेश सुनाया जिसे उन्होंने बोधि-वृक्ष के नीचे मार-कन्याओं को सुनाया था। बोधि-वृक्ष के नीचे भगवान् यह प्रतिज्ञा करके बैठे थे कि "चाहे मेरा शरीर, मांस, रक्त सूखकर चमड़ा, नसें और हड्डियाँ ही क्यों न रह जायँ किंतु विना बुद्धत्व प्राप्त किये मैं इस आसन से न उठूँगा।" तब मार अपनी तीनो कन्याओं के साथ आया और भगवान् को डिगाने के लिए नाना प्रकार के उपद्रव करने लगा एवं मार-कन्याएँ भगवान् को अपने वश में करने के उपाय करने लगीं। उस समय भगवान् ने कहा था—

यस्स जितं नावजीयति जितमस्स नो याति कोचि लोके ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ? ॥ १ ॥
यस्स जालिनी विसत्तिका तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ? ॥ २ ॥

जिसकी जीत हार में परिणत नहीं हो सकती, जिसके जीते हुए राग-द्वेष-मोह फिर नहीं लौटते, उस अनन्त को देखनेवाले अनन्त-गोचर, अ-पद बुद्ध को तुम किस पद से ले जाओगी ? जिसकी जाल फैलानेवाली विष-रूपी तृष्णा कहीं भी ले जाने लायक नहीं रही, उस अनन्तगोचर अ-पद बुद्ध को तुम किस पद से ले जाओगी ? ॥ १, २ ॥

तावतिंस देवलोक में तीन मास वर्षा-वास करके महाप्रवारणा के दिन भगवान् जब मणिमय सोपान द्वारा संकास्य नगर में उतरे, उस

समय वे इंद्रादि देवताओं और मनुष्यों से घिरे थे और उनके शरीर से छः रंगों की रश्मियों की आभा विकीर्ण हो रही थी। उस अपूर्व बुद्ध-श्री को देखकर सारिपुत्र ने अवर्णनीय शोभाधाम शास्ता को प्रणाम करके उनकी वंदना की—"भन्ते! देवता और मनुष्य सभी आपको चाहते हैं।" तब भगवान् ने कहा—

> ये झाणपसुता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता।
> देवापि तेसं पिहयन्ति सम्बुद्धानं सतीमतं ॥ ३ ॥

जो धीर, ध्यान में निरत, त्याग और उपशम में लगे हैं, उन स्मृतिमान् बुद्धों की देवता भी प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

एक बार भगवान् वाराणसी में शिरीष-वृक्षों के नीचे विहार कर रहे थे कि एरकपत्त नागराज वहाँ आया और भगवान् को प्रणाम कर बोला—"भन्ते! मैं कश्यप भगवान् का श्रावक हुआ, किंतु एरक का पत्ता तोड़ने के कारण मुझे माता के गर्भ में आना पड़ा। अब मैं आपका दर्शन कर रहा हूँ। एक बुद्धान्तर हो गया, अब तक मेरा निस्तार नहीं हुआ।" उसकी बात सुन शास्ता ने कहा—

> किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छं मच्चान जीवितं।
> किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ॥ ४ ॥

मनुष्य का जन्म पाना कठिन है, मनुष्य का जीवित रहना कठिन है, सद्धर्म सुनने का अवसर पाना कठिन है, और बुद्धों का उत्पन्न होना बहुत कठिन है ॥ ४ ॥

जेतवन-विहार में एक बार आनंद स्थविर ने पूर्व-बुद्धों के उपोसथ के संबंध में पूछा, तो भगवान् ने कहा—

> सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
> सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं ॥ ५ ॥

सारे पापों को न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध रखना—यही सब बुद्धों की शिक्षा है ॥ ५ ॥

खन्ती परमं तपो तितिक्खा निब्बाणं परमं वदन्ति बुद्धा ।
नहि पब्बजितो परूपघाती समणो होति परं विहेठयन्तो ॥ ६ ॥

सहनशीलता और क्षमाशीलता परम तप है । बुद्ध लोग निर्वाण को परम पद बतलाते हैं । दूसरों का घात करनेवाला एवं दूसरों को पीड़ा पहुँचानेवाला प्रव्रजित होकर भी श्रमण नहीं हो सकता ॥ ६ ॥

अनुपवादो अनुपघातो पातिमोक्खे च संवरो ।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पन्तञ्च सयनासनं ।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं ॥ ७ ॥

निन्दा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष अर्थात् आचार-नियम द्वारा अपने को सुरक्षित रखना, मात्रा जानकर भोजन करना, एकान्त में सोना-बैठना, चित्त को योग में लगाना—यही बुद्धों की शिक्षा है ॥७॥

एक तरुण भिक्षु को मरते समय उसका पिता सौ कर्षापण दे गया । उन्हें पा वह सोचने लगा—"घर-घर भिक्षा माँगकर खाने की अपेक्षा यह अच्छा होगा कि मैं इन कर्षापणों से ही जीवन-यापन करूँ ।" अतः उसने चीवर छोड़ गृहस्थ होने का इरादा कर लिया । भिक्षु-जीवन से उदास उस तरुण-भिक्षु को बुलाकर उपदेश देते हुए भगवान् ने कहा—

न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति ।
अप्पस्सादा दुक्खा कामा इति विञ्ञाय पण्डितो ॥ ८ ॥
अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति ।
तण्हक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्ध सावको ॥ ९ ॥

कर्षापणों (रुपयों) की वर्षा होने पर भी भोग-कामनाओं से मनुष्य की तृप्ति नहीं होती । सभी काम-भोग अल्प-स्वादवाले और दुखदाई हैं । ऐसा जानकर पंडित पुरुष दिव्य काम-भोगों में भी रति नहीं करता, और सम्यक् संबुद्ध का श्रावक शिष्य तृष्णा के विनाश करने में ही लगा रहता है ॥ ८, ९ ॥

राजा प्रसेनजित् का पुरोहित अग्गिदत्त ब्राह्मण घर-बार छोड़ परिव्राजक हुआ, तो उसकी कीर्ति चारो ओर ऐसी चमकी कि थोड़े ही

दिनों में उसके हजारों परिव्राजक-शिष्य हो गये। वह अपने उपदेश में कहता, यदि दुखों से छूटना चाहते हो तो वनों की शरण जाओ, पर्वतों की शरण जाओ, वृक्षों व बागीचों की शरण जाओ। एक बार वह श्रावस्ती के निकट बालुका-राशि पर विहार कर रहा था, तो भगवान् ने उसे उपदेश देने के लिए मोग्गलायन स्थविर को उसके पास भेजा। किंतु अग्गिदत्त ने उन्हें अपने पर्णशाला में ठहरने को स्थान नहीं दिया। अतः स्थविर मोग्गलायन उस बालुका-राशि पर रात बिताने के लिए गये जहाँ एक भयंकर नागराज रहता था। अग्गिदत्त के परिव्राजकों ने समझा कि मोग्गलायन मर गये होंगे। परन्तु उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि स्थविर नागराज के फन के नीचे ध्यानावस्थित बैठे हैं। प्रभावित परिव्राजक उन्हें घेरे खड़े थे कि उसी समय वहाँ भगवान् आ गये। स्थविर ने उठकर भगवान् को प्रणाम किया। परिव्राजकों ने चकित हो पूछा—"क्या ये तुमसे भी बड़े हैं?" स्थविर ने कहा—"हाँ, भगवान् मेरे शास्ता हैं, मैं इनका श्रावक हूँ।" तब परिव्राजकों ने भी हाथ जोड़ भगवान् की वंदना की। भगवान् ने अग्गिदत्त को बुलाकर पूछा—"अग्गिदत्त! उपदेश देते समय श्रोताओं से तुम क्या कहा करते हो?" अग्गिदत्त ने वन-पर्वत-वृक्ष की शरण को कह सुनाया। भगवान् ने कहा—"वृक्षादि की शरण में जानेवाला दुखों से छुटकारा नहीं पाता; बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जानेवाला ही दुखों से विमुक्त हो जाता है।" यह उपदेश देकर भगवान् ने कहा—

> बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च।
> आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता ॥ १० ॥
> नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
> नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥ ११ ॥

भय के मारे मनुष्य पर्वत, वन, बाग, वृक्ष, चैत्य आदि को देवता मानकर उनकी शरण में जाते हैं; किंतु ये शरण मंगलदायक नहीं, ये

शरण उत्तम नहीं, क्योंकि इन शरणों में जाने से मनुष्य को सब दुखों से छुटकारा नहीं मिलता ॥ १०, ११ ॥

यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च सङ्घञ्च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति ॥ १२ ॥
दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियञ्च'ट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥ १३ ॥
एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥ १४ ॥

जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया है, जिसने चार आर्य-सत्यों—दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःख से मुक्ति और दुःख-नाशक आर्य-अष्टांगिक मार्ग को सम्यक् प्रज्ञा से देख लिया है, वही दुःखों को शमन करने की ओर जाता है। ये ही शरण मंगलदायक हैं। इनको पाकर ही मनुष्य सारे दुःखों से छूट जाता है ॥ १२, १३, १४ ॥

एक बार जेतवन में आनंद स्थविर ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! आपने उत्तम हाथी और उत्तम घोड़े के उत्पत्ति-स्थान को तो बताया किंतु उत्तम पुरुष के उत्पत्ति-स्थान को नहीं बतलाया" भगवान् उत्तर दिया—

दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति।
यत्थ सो जायती धीरो तं कुलं सुखमेधति ॥ १५ ॥

उत्तम पुरुष दुर्लभ हैं। वे सर्वत्र उत्पन्न नहीं होते। वे धीर पुरुष जहाँ उत्पन्न होते हैं, उस कुल में सुख की वृद्धि होती है ॥ १५ ॥

एक बार जेतवन-विहार में बहुत-से भिक्षु सुखों का विवेचन कर रहे थे कि संसार में कौन-सा सुख है? कोई राज्य-सुख का नाम लेता था और कोई काम-सुख का। भगवान् ने यह चर्चा सुनकर कहा—

सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो ॥ १६ ॥

बुद्धों का पैदा होना सुखकर है, सद्धर्म का उपदेश सुखकर है, संघ में एकता का होना सुखकर है और मिलकर तप करना सुखकर है ॥१६॥

एक समय श्रावस्ती से वाराणसी जाते हुए भगवान् ने मार्ग में तोदेयय्य ग्राम के पास एक देवस्थान को देखा। भगवान् ने खेतों के काम में लगे एक ब्राह्मण को बुलाया, तो वह भगवान् के पास आ उस देवस्थान को प्रणामाकर एक ओर खड़ा हो गया। भगवान के यह पूछने पर कि "तुमने क्या जानकर इस स्थान को प्रणाम किया?" ब्राह्मण ने कहा—"परंपरा से यह चैत्य-स्थान है।" तब भगवान् ने घटिकार-सूत्र को सुनाकर कश्यप बुद्ध के सुवर्ण-चैत्य का वर्णन करते हुए कहा—

> पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
> पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे ॥ १७ ॥
>
> ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये।
> न सक्का पुञ्ञं संखातुं इमेत्तमिति केनचि ॥ १८ ॥

जो शोक और भय से विमुक्त हो संसार का अतिक्रमण कर गये हैं, उन पूजनीय बुद्धों अथवा उनके श्रावक-शिष्यों की या उनके समान युक्त और निर्भय पुरुषों की पूजा के पुण्य का परिमाण "इतना है" कहकर कोई नहीं बता सकता ॥ १७, १८ ॥

———

१५—सुखवग्गो

शाक्य और कोलिय गणतंत्रों की सीमा का विभाजन रोहिणी नदी करती थी। दोनो जनपद-वासी रोहिणी के पानी से खेतों की सिंचाई करते थे और पानी के कारण हमेशा झगड़ा होता था। एक बार झगड़ा इतना बढ़ गया कि दोनो राज्यों की फौजें युद्ध के लिए आ गइ, और भयंकर रक्तपात की समस्या उपस्थित हो गई। इसे रोकने के लिए भगवान् आकाश-मार्ग से जाकर रोहिणी के बीच आकाश में पालथी लगाकर विराजमान हो गये। युद्ध रुक गया और सब भगवान् की ओर देखने लगे। भगवान् ने दोनो पक्षों को समझाया कि "पानी के

लिए नररक्त बहाना दुःखमय होगा। सुख की इच्छा रखनेवाले को निर्वैर होकर रहना चाहिए" और कहा—

सुसुखं वत ! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो ।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥ १ ॥

वैर करनेवाले मनुष्यों में अवैरी हो, अहो! हम सुख-पूर्वक जीवन बिता रहे हैं। वैरी मनुष्यों के बीच अवैरी होकर हम विहार करते हैं॥ १॥

सुसुखं वत ! जीवाम आतुरेसु अनातुरा ।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ॥ २ ॥

पीड़ित मनुष्यों में पीड़ा-रहित हो, अहो ! हम सुख-पूर्वक जीवन बिता रहे हैं। पीड़ित मनुष्यों के बीच पीड़ा-रहित होकर हम विहार करते हैं॥ २॥

सुसुख वत ! जीवाम उस्सुकेसु अनुस्सुका ।
उस्सुकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका ॥ ३ ॥

आसक्त मनुष्यों के बीच अनासक्त हो, अहो ! हम सुख-पूर्वक जीवन बिता रहे हैं। आसक्त मनुष्यों के बीच अनासक्त होकर हम विहार करते हैं॥ ३॥

एक दिन भगवान् मगध के पंचशाला नामक ब्राह्मणों के गाँव में भिक्षाटन के लिए गये तो मार-पुत्रों ने उन्हें एक कलछी भात भी नहीं दिया। जब भगवान् खाली-पात्र गाँव के बाहर जाने लगे, तो व्यंग्य करके एक गाँववाले ने कहा—"क्या श्रमण ! भिक्षा नहीं मिली ? चलो, फिर प्रवेश करो।" भगवान् ने "अब नहीं चाहिए" कहकर कहा—

सुसुखं वत ! जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं ।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा ॥ ४ ॥

जिन हम लोगों के पास कुछ नहीं, अहो! वह हम कितने सुख से जीवन बिता रहे हैं। हम आभास्वर देवताओं की भाँति प्रीति का ही भोजन करके सुखी रहेंगे॥ ४॥

कोसल-नरेश प्रसेनजित् काशी के लिए जब तीन बार युद्ध करके

अजातशत्रु से हार गये, तो खाना-पीना छोड़ लेट रहे। भिक्षुओं ने यह बात भगवान् को बताई, तो भगवान् ने कहा—

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्त्वा जयपराजयं ॥ ५ ॥

विजय वैर को उत्पन्न करती है, पराजित दुःख की नींद सोता है। किंतु जिसके राग आदि दोष उपशमित हो गये हैं, वह पुरुष जय और पराजय को छोड़ सुख की नींद सोता है ॥ ५ ॥

श्रावस्ती की एक कुलीन-कन्या के विवाह में निमंत्रित हो भगवान् भिक्षुओं के साथ जा एक सफेद बिछे आसन पर बैठ गये। वह सुंदर कन्या भिक्षुओं के लिए जल छानती इधर-उधर आ-जा रही थी। उसका कामातुर पति उसी पर आँख गड़ाये ऐसे देख रहा था मानो उसे पकड़ना चाहता है। भगवान् ने ऋद्धिबल से ऐसा किया कि वह लड़की उसकी नज़रों से ग़ायब हो गई। तब वह खड़ा हो भगवान् की ओर देखने लगा। भगवान् ने उसे उपदेश देते हुए कहा—

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खन्धासमा दुक्खा नत्थि सन्तिपरं सुखं ॥ ६ ॥

राग के समान अग्नि नहीं, द्वेष के समान मल नहीं, पंच-स्कन्धों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) के समुदाय के समान दुःख नहीं और शांति से बढ़कर सुख नहीं ॥ ६ ॥

एक समय भगवान् भिक्षुओं के साथ आलवी नगर गये तो नगर-वासियों ने उन्हें भोजन के लिए निमंत्रित किया। भगवान् के दर्शन और उपदेश-श्रवण के लिए एक गरीब उपासक ने भी मन किया, तो बेचारे का बैल कहीं भाग गया। वह बिना कुछ खाये-पिये ही बैल ढूँढने के लिए घर से निकल गया। और दोपहर में लौटा, तो जल्दी-जल्दी बैल को घर में बाँध, दौड़ता हुआ भगवान् के पास आ प्रणामकर एक ओर खड़ा हो गया। भगवान् ने परिचर्या करनेवालों से भोजन मँगवा-कर उसे दिलाया। भोजन करके जब वह बैठा, तो भगवान् ने उपदेश

आरंभ किया। उपदेश सुन उपासक स्रोतापन्न हो गया। दानानुमोदन कर भगवान् जब विदा हुए, तो मार्ग में भिक्षुगण परस्पर कहने लगे— "शास्ता ने आज एक मनुष्य को भोजन दिलाया।" यह सुन भगवान् ने कहा—"भूख से पीड़ित मनुष्य धर्म नहीं समझ पाता। भूख बड़ा भारी रोग है।" फिर भगवान् ने कहा—

जिघच्छा परमा रोगा सङ्खारा परमा दुखा।
एवं ञत्वा यथाभूतं निब्बाणं परमं सुखं ॥ ७ ॥

भूख सबसे बड़ा रोग है। संस्कार सबसे बड़े दुख हैं, ऐसा जानकर ही निर्वाण को परम सुख कहा जाता है ॥ ७ ॥

एक दिन राजा प्रसेनजित् ने कहा—"भन्ते! थोड़ा भोजन करने से मुझे शारीरिक सुख है, खोई हुई मणि मिल जाने से संतोष है, आप के श्रावकों के साथ विश्वास करने से सुख है।" इस पर भगवान् ने कहा—

आरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं।
विस्सासपरमा ञाती निब्बाणं परमं सुखं ॥ ८ ॥

नीरोग रहना परम लाभ है, सन्तुष्ट रहना परम धन है, विश्वास सबसे बड़ा बंधु है और निर्वाण सबसे बड़ा सुख है ॥ ७ ॥

वैशाली में विहार करते हुए जब भगवान् ने घोषणा की कि "अब चार मास बाद मैं परिनिर्वृत हो जाऊँगा।" तो भगवान् के निकट रहनेवाले भिक्षुओं में बड़ी ही घबराहट फैल गई। तिस्स स्थविर इस इरादे से कि मैं शास्ता के रहते ही अर्हत्व प्राप्त कर लूँ, चारो ईर्य्या-पथों में अकेले ही विहरने लगे। यह बात जब भगवान् तक पहुँची, तो तिस्स स्थविर को साधुकार देते हुए उन्होंने कहा—"गंध-माला आदि से मेरी पूजा करनेवाले मेरी यथार्थ पूजा नहीं करते, मेरे बताये धर्म के अनुसार आचरण करनेवाले ही मेरी सच्ची पूजा करते हैं।" भगवान् ने कहा—

पविवेकरसं पीत्वा रसं उपसमस्स च।
निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरसं पिवं ॥ ९ ॥

एकान्त-चिन्तन तथा उपशम-रूप शान्ति के रस को पीकर मनुष्य निर्भय होता है, और धर्म-प्रीति के रस को पीकर मनुष्य निष्पाप होता है ॥ ९ ॥

आयु-संस्कार त्यागकर जब भगवान् वैशाली के पास बेलुव-ग्राम में रहे थे, उस समय भगवान् को आँव-खून का रोग हो गया था। यह जान देवराज शक्र भगवान् की सेवा करने आया। वह भगवान् के मल-मूत्र के बर्तन भी सिर पर उठाकर ले जाता था। भगवान् जब अच्छे हो गये और इंद्र चला गया, तो भिक्षुओं ने उसकी सेवा की चर्चा की। उसे सुन भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! शक्र ने जो मेरी सेवा की, उसके लिए आश्चर्य मत करो। वह मेरे ही सहारे वृद्ध-शक्रत्व को त्यागकर तरुण शक्र हुआ। मृत्यु से भयभीत इंद्र जिस समय शाल-गुहा में मेरे पास आया और मुझसे जीवित रहने का उपाय पूछा, तो मेरे बताये मार्ग से स्रोतापन्न होकर वह तरुण-शक्र हुआ।* इस प्रकार मैं उसका बड़ा उपकारक हूँ। यह रहस्य खोलकर भगवान् ने कहा—

साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो।
अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया ॥ १० ॥

आर्यों (अर्थात् निर्वाण के पथ पर अविचल रूप से आरूढ़ सत्पुरुषों) का दर्शन करना अच्छा है, उनके साथ निवास करना सुखदायक होता है; किंतु मूढ़ों का दर्शन न होने से ही मनुष्य सदा सुखी रहता है ॥ १० ॥

बालसंगतिचारी हि दीघमद्धानं सोचति।
दुक्खो बालेहि संवासो अमित्तेनेव सब्बदा।
धीरो च सुखसंवासो ञातीनं'व समागमो ॥ ११ ॥

---

* तात्पर्य यह कि देवलोक का राजा शक्र पहले हिंसामयी वैदिक यज्ञों की बलि लेता, सुरापान करता और सुर-सुन्दरियों से अपरिमित संभोग करता हुआ वृद्ध हो मृत्यु के निकट पहुँच गया था, किंतु भगवान् की शरण आ शीलसंपन्न हो वह विमल-चित्त तरुण-शक्र हो गया।

मूर्खों की संगति में रहनेवाला दीर्घ-काल तक शोक करता है, क्योंकि मूढ़ों की संगति शत्रु की संगति की तरह सदा दुखदाई होती है तथा धीर पुरुषों की संगति बन्धुओं की संगति की भाँति सुखदाई ॥ ११ ॥

तस्माहि, धीरञ्च पञ्ञञ्च बहुस्सुतञ्च धोरय्हसीलं वतवन्तमरियं ।
तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं भजेथ नक्खत्तपथं'व चन्दिमा ॥ १२ ॥

अतएव, धीर, प्राज्ञ, बहुश्रुत, उद्योगी, व्रती, आर्य तथा सुबुद्ध सत्पुरुषों का सेवन वैसे ही करे जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-पथ का ॥ १२ ॥

१६—पियवग्गो

श्रावस्ती के एक गृहस्थ का एक-मात्र पुत्र भागकर प्रव्रजित हो गया। बेटे को प्रव्रजित देख बाप भी प्रव्रजित हो गया। पति-पुत्र दोनो के प्रव्रजित हो जाने पर स्त्री भी प्रव्रजित हो गई। लेकिन तीनों श्रमण-धर्म न करके गप्पें लड़ाया करते थे। इस बात की शिकायत पहुँचने पर भगवान् ने तीनों को बुलाकर पूछा। उनके दोष स्वीकार कर लेने पर भगवान् ने कहा—

अयोगे युञ्जमत्तानं योगस्मिञ्च अयोजयं ।
अत्थं हित्वा पियग्गाही पिहेत'त्तानुयोगिनं ॥ १ ॥

संसारी आसक्ति में लगे हुए तथा अनासक्ति में न लगनेवाले और परमार्थ छोड़कर प्रिय के पीछे भागनेवाले व्यक्ति को चाहिए कि आत्मोन्नति में निरत पुरुष की स्पृहा करे ॥ १ ॥

मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं ।
पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं ॥ २ ॥

प्रियों का संग न करो और अप्रियों का संग कभी न करो। क्योंकि प्रियों का अदर्शन दुखदाई होता है और अप्रियों का दर्शन ॥ २ ॥

तस्मा पियं न कयिराथ पियापायो हि पापको ।
गन्था तेसं न विज्जन्ति येसं नत्थि पियाप्पियं ॥ ३ ॥

इसलिए किसी को प्रिय न बनाओ, क्योंकि प्रिय का वियोग होता है। जिन्हें न कोई प्रिय है न अप्रिय, उनके चित्त में कभी गाँठ नहीं पड़ती ॥ ३ ॥

श्रावस्ती के एक कुनबी का पुत्र मर गया। वह पुत्र-शोक से व्यथित रोज श्मशान में जाकर रोता था। एक दिन भोजनोपरान्त भगवान् एक भिक्षु के साथ उसके घर गये, और उसे उपदेश देते हुए उरग-जातक सुनाकर भगवान् ने कहा—

पियतो जायते सोको पियतो जायते भयं।
पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥ ४ ॥

प्रिय से शोक उत्पन्न होता है और प्रिय से भय उत्पन्न होता है। जो प्रिय के बंधन से मुक्त हैं, उन्हें न शोक होता है और न भय ॥ ४ ॥

महोपासिका विशाखा की नातिन दन्तकुमारी मर गई, तो वह उदास रोती हुई भगवान् के पास आई। भगवान् ने कहा—"मरनेवाला मरता है, नहीं मरनेवाला नहीं मरता। श्रावस्ती में कितने लोग रोज़ मरते हैं, यदि ये सभी दन्तकुमारी की तरह तुम्हें प्रिय हों, तो क्या तुम दिन-रात उनके लिए रोती-चिल्लाती ही घूमोगी ? इसलिए, विशाखे ! शोक न करो।" क्योंकि—

पेमतो जायते सोको पेमतो जायते भयं।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥ ५ ॥

प्रेम से शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है। जो प्रेम के बंधन से मुक्त हैं, उन्हें न शोक होता है और न भय ॥ ५ ॥

एक दिन वैशाली के लिच्छवी खूब सज-धजकर एक उत्सव में गये। वहाँ गणिका के लिए उनमें मार-पीट होने लगी, और कई खून से लथपथ चारपाई पर पड़कर नगर आये। इस पर भगवान् ने भिक्षुओं से कहा—

रतिया जायते सोको रतिया जायते भयं।
रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥ ६ ॥

रति और राग से शोक उत्पन्न होता है, रति से भय उत्पन्न होता है। जो रति और राग से मुक्त हैं, उन्हें न शोक होता है और न भय ॥ ६ ॥

श्रावस्ती के एक बड़े धनवान् सेठ के पुत्र का नाम 'अनित्थि-गंधकुमार' था, क्योंकि वह स्त्री-गंध नहीं सह सकता था। उसका विवाह सागल-नगर के एक महाधनिक सेठ की स्वर्णप्रतिमा-सी सुन्दरी कन्या के साथ पक्का हुआ। किंतु सागल से श्रावस्ती रथ पर आती हुई वह कन्या रास्ते में मर गई। उसके मृत्यु-समाचार से अनित्थिगंधकुमार अत्यंत दुखित हुआ। एक दिन उसके माँ-बाप ने भगवान् को निमंत्रित किया। भोजनोपरान्त भगवान् ने अनित्थिगंधकुमार को बुलाकर पूछा—"कुमार! जानते हो, तुम्हें इतना अधिक शोक क्यों हुआ?" कुमार ने कहा—"नहीं भन्ते!" भगवान् ने शोक का कारण 'काम' को बताकर कहा—

कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं।
कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुत्तो भयं? ॥ ७ ॥

काम से शोक उत्पन्न होता है, और काम से भय उत्पन्न होता है। जो पुरुष काम से मुक्त है, उसे न शोक है और न भय ॥ ७ ॥

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण ने नदी के किनारे धान बोये थे। उसने भगवान् से कहा—"धान होगा तो पहले मैं आपको खिलाऊंगा।" किंतु नदी में बाढ़ आ जाने से उसका खेत बह गया। ब्राह्मण दुखित हो खाना-पीना छोड़कर पड़ रहा। यह जान भगवान् भोजनोपरान्त स्वयं उसके घर गये और पूछा—"जानते हो ब्राह्मण! तुम्हें इतना शोक क्यों हुआ?" ब्राह्मण बोला—"नहीं गौतम!" तब भगवान् ने 'तृष्णा' को शोक का कारण बताकर कहा—

तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं? ॥ ८ ॥

तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है। जो तृष्णा से मुक्त है, उसे न शोक होता है और न भय ॥ ८ ॥

राजगृह के वेणुवन में विहार करते समय एक दिन भगवान् ने

बहुत-से बालकों को टोकरियों में पुवे-भरे उद्यान में खेलने जाते देखा। बालकों ने भगवान् को भिक्षाटन के लिए जाते देखकर भी केवल वन्दना की, पुवे नहीं दिये। किन्तु पीछे आते हुए महाकाश्यप स्थविर को पंचांग प्रणाम करके सब पुवे दान कर दिये। महाकाश्यप ने पुवे भगवान् के पास ले चलने को कहा। यह देखकर भिक्षुगण असमंजस में पड़ गये। तब भगवान् ने महाकाश्यप की प्रशंसा करते हुए कहा—

सील दस्सनसम्पन्नं धम्मट्ठं सच्चवादिनं।
अत्तनो कम्म कुब्बानं तं जनो कुरुते पियं ॥ ६ ॥

जो शीलवान है, जो दर्शन-ज्ञान से संपन्न है, जो धर्म में स्थित है, जो सत्यवादी है तथा जो अपने कर्तव्य-कर्म का करनेवाला है, उस पुरुष से सभी लोग प्रेम करते हैं ॥ ६ ॥

जेतवन में विहार करते समय एक अनागामी स्थविर के मर जाने पर उनके शिष्य उनकी गति पूछने आये, तो भगवान् ने कहा—

छन्दजातो अनक्खाते मनसा च फुटो सिया।
कामेसु च अप्पटिवद्धचित्तो उद्धंसोतो'ति वुच्चति ॥ १० ॥

जिसे निर्वाण की अभिलाषा है, जिसने उसे मन से स्पर्श किया है, जिसका चित्त काम-भोगों में आबद्ध नहीं है, वह 'ऊर्ध्वस्रोत' कहलाता है ॥ १० ॥

वाराणसी में नन्दिय नामक एक धर्मात्मा सेठ-पुत्र था। वह अत्यंत श्रद्धालु था। उसने ऋषिपत्तन मृगदाव में एक विहार बनवाकर भिक्षु-संघ को दान किया था। उसके संबंध में प्रसिद्ध हुआ कि मरने से पूर्व ही देव-लोक में उसके लिए सुन्दर रमणीय निवास बन गया है। भिक्षुओं के शंका करने पर भगवान् ने कहा—

चिरप्पवासिं पुरिसं दूरतो सोत्थिमागतं।
ञातिमित्ता सुहज्जा च अभिनन्दन्ति आगतं ॥ ११ ॥
तथेव कतपुञ्ञम्पि अस्मा लोका परं गतं।
पुञ्ञानि पतिगण्हन्ति पियं ञातीव आगतं ॥ १२ ॥

चिरकाल तक परदेश में रहकर सकुशल लौटे पुरुष का जैसे उसके जाति-भाई, मित्र और सुहृद् जन अभिनन्दन करते हैं, उसी प्रकार पुण्य-कर्मा पुरुष के पुण्य-कर्म इस लोक से जाने पर परलोक में प्रियजनों की तरह ही उसका स्वागत करते हैं ॥ ११, १२ ॥

१७—क्रोधवग्गो

एक बार भगवान् अनुरुद्ध आदि बहुत-से भिक्षुओं के साथ कपिल-वस्तु के न्यग्रोधाराम में गये, तो सभी लोग उन्हें प्रणाम करने आये, केवल अनुरुद्ध की बहिन रोहिणी छविरोग होने के कारण नहीं आई। बाद में अनुरुद्ध के बुलाने पर मुँह ढककर आई। अनुरुद्ध ने उसे भिक्षुओं के लिए आसन-शाला बनवाकर दान करने को कहा, जिसके बनवाते ही उसका छविरोग अच्छा होने लगा। भगवान् ने पूछा—"रोहिणी! जानती हो, तुम्हें यह रोग क्यों हुआ?" रोहिणी बोली—"नहीं भन्ते!" तब भगवान् ने बताया—"तेरे क्रोध के कारण। तूने पूर्वजन्म में राजमहिषी होकर एक नर्तकी को क्रोध से उत्पीड़ित किया था। उसी का यह फल है।" यह बताकर भगवान् ने कहा—

कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं सञ्ञोजनं सब्बमतिक्कमेय्य ।
तं नाम-रूपस्मिं असज्जमानं अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खा ॥ १ ॥

क्रोध को छोड़े, अभिमान का त्याग करे, सारे संयोजनों (बंधनों) से पार हो जाय, ऐसे नाम-रूप में आसक्त न होनेवाले तथा परिग्रह-रहित पुरुष को दुःख नहीं सताते ॥ १ ॥

श्रावस्ती के एक भिक्षु ने अपनी कुटी बनाने के लिए एक वृक्ष को काटते हुए कुल्हाड़ी से एक बच्चे की बाँह काट डाली। बच्चे की माँ को इतना क्रोध आया कि उस भिक्षु को जान से मार डाले। किंतु फिर अपने क्रोध को रोक वह भगवान् के पास गई और वंदना करके रोते हुए सारी बात कह सुनाई। भगवान् ने 'साधुकार' देकर उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—

यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं'व धारये ।
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिग्गाहो इतरो जनो ॥ २ ॥

जो चढ़े क्रोध को भागते हुए रथ की तरह रोक लेता है, उसी को मैं (महा-चंचल मन का) असल सारथी कहता हूँ, दूसरे तो केवल रस्सी पकड़नेवाले हैं ॥ २ ॥

राजगृह के श्रेष्ठी 'पूर्ण' की 'उत्तरा' नाम की एक कन्या थी, जो भगवान् बुद्ध की परम भक्त थी। उसका विवाह जिस श्रेष्ठी-पुत्र के साथ हुआ, वह विमुख था। और 'सिरिमा' नामक एक गणिका को रखता था। एक दिन उत्तरा ने अपने पिता के धन से भगवान् का भिक्षु-संघ सहित निमंत्रण किया। वह तैयारी में इतनी व्यस्त थी कि उसके शरीर से पसीना चू रहा था। ऊपर के कमरे से उसकी दशा देख श्रेष्ठी-पुत्र हँसा। उसे हँसते देख सिरिमा नीचे आई और खौलते घी को उसके शरीर पर डालने गई, तो उत्तरा मैत्री-भावना-युक्त होकर खड़ी हो गई, जिससे वह गरम घी शीतल जल होकर बह गया। सिरमा फिर खौलता घी लेकर उस पर डालने चली, तो दासियों ने उसे पकड़ लिया और मारने लगीं। किंतु उत्तरा ने दासियों को रोक सिरिमा के शरीर में तेल मलवाकर उसे सप्रेम स्नान कराया। सिरिमा लज्जित हो, उसके पैरों पर गिरकर, क्षमा माँगने लगी। उत्तरा ने उसे भगवान् से क्षमा माँगने को कहा। दूसरे दिन भगवान् के आने पर भोजनोपरांत सिरिमा रोती हुई भगवान् के चरणों पर सिर रखकर क्षमा माँगने लगी। भगवान् ने उत्तरा की क्रोध-विजयता के लिए 'साधु-साधु' कहकर सराहना करते हुए कहा—

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने ।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं ॥ ३ ॥

क्रोध को अक्रोध से, असाधु को साधुता से, कंजूस को दान से तथा झूठ बोलनेवाले को सत्य से जीते ॥ ३ ॥

जेतवन-विहार में एक दिन महामोग्गलायन स्थविर ने पूछा—

"क्या भन्ते!" केवल सत्य बोलने, क्रोध न करने एवं ईख आदि का दान करने से भी कोई स्वर्ग जा सकता है?" भगवान् ने कहा—

सच्चं भणे न कुज्झेय्य दज्जा'प्पस्मिम्पि याचितो ।
एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके ॥ ४ ॥

सच बोले, क्रोध न करे, माँगने पर थोड़ा रहते भी दान दे। इन तीन बातों के करने से मनुष्य देवताओं के पास जाता है ॥ ४ ॥

साकेत में रहते समय एक दिन भगवान् भिक्षाटन के लिए निकले, तो साकेत-वासी एक वृद्ध ब्राह्मण भगवान् को अपने घर ले गया और 'पुत्र' कहकर उसने भगवान् को भिक्षु-संघ-सहित भोजन कराया। उसकी ब्राह्मणी ने भी भगवान् को 'पुत्र' कहा। भिक्षुओं के पूछने पर भगवान् ने बताया—"भिक्षुओ! पूर्व-जन्मों में अनेक बार ये मेरे माता-पिता रहे हैं। उसी संस्कार की अनुस्मृति में इन्होंने मुझे 'पुत्र' कहा।" थोड़े ही दिनों में ब्राह्मण अनागामी हो परिनिर्वृत हो गये। भिक्षुओं द्वारा गति पूछने पर भगवान् ने कहा—

अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन संवुता ।
ते यन्ति अच्चुतं ठानं यत्थ गन्त्वा न सोचरे ॥ ५ ॥

जो मुनि लोग हिंसा से रहित और सदा अपनी काया में संयत रहते हैं, वे उस अच्युत-पद को प्राप्त करते हैं, जिसे प्राप्त करके वे शोक-मुक्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥

राजगृह के एक श्रेष्ठी की 'पूर्णा' नाम की दासी बड़ी रात तक धान कूटती पसीने में तर हो घर से बाहर निकल खड़ी थी कि उसने कुछ भिक्षुओं को आते देखा। उसने सोचा, ये भिक्षु इतनी रात तक क्यों घूम रहे हैं, क्या कोई बीमार है? सबेरे कुछ रोटी सेंक पानी के लिए वह घाट की ओर गई, तो भिक्षाटन के लिए जाते हुए भगवान् मिल गये। पूर्णा ने रोटी भगवान् को दे दी और भगवान् ने वहीं पर खा लिया। इसके बाद भगवान् ने पूछा—"पूर्णे! तूने रात में मेरे

श्रावकों को देख सन्देह क्यों किया ?" पूर्णा ने सारी बात बता दी। तब भगवान् ने कहा—

सदा जागरमानानं अहोरत्तानुसिक्खिनं ।
निब्बाणं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥ ६ ॥

जो सदा जागरणशील रहते हैं, जो रात-दिन सीखने में लगे रहते हैं, जो निर्वाण की ओर प्रयत्नशील हैं, उनके सारे आश्रव (चित्त-मल) नष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥

श्रावस्ती के रहनेवाले अतुल उपासक को, जो स्थविर रैवत, सारिपुत्र और आनन्द के उपदेशों से अतृप्त हो भगवान् के पास आया था, भगवान् ने निंदा-प्रशंसा के संबंध में कहा—

पोराणमेतं अतुल ! नेतं अज्जतनामिव ।
निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं ।
मितभाणिनम्पि निन्दन्ति नत्थि लोके अनिन्दितो ॥७॥
न चाहु न च भविस्सन्ति न चेतरहि विज्जति ।
एकन्तं निन्दितो पोसो एकन्त वा पसंसितो ॥ ८ ॥

हे अतुल ! यह आज की नहीं, पुरानी बात है कि लोग चुप रहनेवाले की निंदा करते हैं और बहुत बोलनेवाले की भी निंदा करते हैं एवं मितभाषी की भी निंदा करते हैं। संसार में अनिन्दित कोई नहीं है। ऐसा पुरुष जिसकी निंदा ही निंदा हो या जिसकी प्रशंसा ही प्रशंसा हो, न कभी था, न होगा और न आज है ॥ ७, ८ ॥

यञ्चे विञ्ञू पसंसन्ति अनुविच्च सुवे सुवे ।
अच्छिद्दवुत्तिं मेधाविं पञ्ञासीलसमाहितं ॥ ९ ॥
नेक्खं जम्बोनदस्सेव को तं निन्दितुमरहति ।
देवापि तं पसंसन्ति ब्रह्मुणाऽपि पसंसितो ॥ १० ॥

ऐसा अपने मन में जानकर विज्ञ लोग जिस निर्दोष स्वभाववाले, मेधावी, प्रज्ञा और शील-संयुक्त पुरुष की सदा प्रशंसा करते हैं, उसकी

सोने की अशर्फी के समान कौन निंदा कर सकता है? देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं और ब्रह्मा द्वारा भी वह प्रशंसित होता है ॥ ६, १० ॥

जिस समय भगवान् वेणुवन में विहार करते थे, एक दिन एक वज्जिय भिक्षु खड़ाऊं पर चढ़े खट-खट करते टहल रहे थे। शास्ता ने 'खट-खट' शब्द सुनकर भिक्षुओं को उपदेश देते हुए निम्नलिखित शिक्षापद कहे—

कायप्पकोपं रक्खेय्य कायेन संवुतो सिया।
कायदुच्चरितं हित्त्वा कायेन सुचरितं चरे ॥ ११ ॥

कायिक चंचलता से बचा रहे। काया का संयम रखे। कायिक दुराचार को छोड़कर कायिक सदाचार का आचरण करे ॥ ११ ॥

वचीपकोपं रक्खेय्य वाचाय संवुतो सिया।
वची दुच्चरितं हित्त्वा वची सुचरितं चरे ॥ १२ ॥

वाणी के दुराचार से बचा रहे। वाणी को संयत रखे। वाणी के दुराचार को छोड़कर वाणी के सदाचार का आचरण करे ॥ १२ ॥

मनोपकोपं रक्खेय्य मनसा संवुतो सिया।
मनो दुच्चरितं हित्त्वा मनसा सुचरितं चरे ॥ १३ ॥

मन की चंचलता से बचा रहे। मन का संयम रखे। मानसिक दुराचार को छोड़कर मानसिक सदाचार का आचरण करे ॥ १३ ॥

कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता।
मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवुता ॥ १४ ॥

जो धीर पुरुष काया से संयत हैं, वाणी से संयत हैं और मन से भी संयत हैं, वे ही पूर्ण रूप से संयत कहे जा सकते हैं ॥ १४ ॥

———

१८—मलवग्गो

श्रावस्ती के एक गोघातक के पुत्रों ने भगवान् को निमंत्रित कर भोजन कराया और भोजनोपरान्त कहा—"भन्ते! इस भोजन को हमने अपने बूढ़े पिता के जीवन के लिए दिया है। उन्हीं के लिए इसका

अनुमोदन कीजिए।" भगवान् ने उसके पिता को बुलाकर दानानुमोदन करके कहा—

पाण्डुपलासो'व दानिसि यमपुरिसापि च तं उपट्ठिता ।
उय्योगमुखे च तिट्ठसि पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति ॥ १ ॥
सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डितो भव ।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो दिब्बं अरियभूमिमेहिसि ॥ २ ॥

तू इस समय पीले पत्ते के समान है। यमदूत तेरे पास आ खड़े हैं। तू प्रयाण के लिए तैयार है, किंतु तेरे पास पाथेय कुछ नहीं है। सो तू अपने लिए द्वीप (रहने का सुरक्षित स्थान) बना। उद्योग कर, पंडित बन, चित्त-मलों को धो डाल और दोष-रहित बन। तभी तू आर्य सत्पुरुषों के दिव्य पद को प्राप्त करेगा ॥ १, २ ॥

भगवान् के इस उपदेश से गोघातक-पुत्र स्रोतापत्ति फल को प्राप्त हुआ और दूसरे दिन फिर भगवान् को निमंत्रित कर अपने पिता के लिए दानानुमोदन की प्रार्थना की। भगवान् ने दूसरे दिन भी दानानुमोदन करते हुए कहा—

उपनीतवयो च दानिसि सम्पयातोसि यमस्स सन्तिके ।
वासोपि च ते नत्थि अन्तरा पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति ॥ ३ ॥
सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डितो भव ।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो न पुन जातिजरं उपेहिसि ॥ ४ ॥

तेरी आयु समाप्त हो गई, तू यम के पास पहुँच चुका, किंतु तेरा कोई निवासस्थान नहीं है, यात्रा के लिए तेरे पास पाथेय भी नहीं है। सो तू अपने लिए द्वीप बना, उद्योग कर, पंडित बन, चित्त-मलों को धो डाल और दोष-रहित बन। तभी तू आर्यों के दिव्य पद को प्राप्त करेगा ॥ ३, ४ ॥

श्रावस्ती का एक ब्राह्मण उस स्थान पर खड़ा हुआ, जहाँ भिक्षु लोग अपने चीवर ओढ़ रहे थे। स्थान साफ न था। घास पर पड़ी ओस की बूँदों से भिक्षुओं के चीवर भीग गये थे। ब्राह्मण ने उस स्थान को साफ

करा एक शाला बनवाई और भिक्षु-संघ-सहित भगवान् को निमंत्रित कर उसे दान कर दिया। भोजनोपरान्त उसने अपने पहले किये सब कामों को सुनाया, तो भगवान् ने कहा—

अनुपुब्बेन मेधावी थोकथोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो ॥ ५ ॥

सोनार जैसे बार-बार तपाकर चाँदी के मैल को दूर करता है, उसी प्रकार मेधावी पुरुष को चाहिए कि प्रतिक्षण थोड़ा-थोड़ा करके अपने चित्त-मलों को दूर करे ॥ ५ ॥

श्रावस्ती-वासी तिस्स स्थविर का मोटा चीवर जब उनकी बहन ने दुरुस्त करके दिया, तो उन्होंने प्रसन्न हो "कल पहनूँगा" कहकर उसे अरगनी पर टाँग दिया। किंतु भोजन की मात्रा का विचार न रहने से अपच के कारण रात में उनकी मृत्यु हो गई। दूसरे दिन मृत शरीर का दाह करके भिक्षु लोग परस्पर बाँटने के लिए जब चीवर उठाने लगे तो शब्द हुआ "हमारी वस्तु लूट रहे हैं" और चीवर इधर-उधर रेंगने लगा। गंधकुटी में बैठे हुए दिव्य-श्रोत से ये शब्द सुनकर भगवान् ने आनन्द से कहा—"आनन्द! भिक्षुओं से कह दो, तिस्स का चीवर अभी वहीं रहने दें। सात दिन बाद उठाकर बाँट लेंगे।" कारण पूछने पर भगवान् ने बताया—"तिस्स की तृष्णा चीवर के प्रति होने के कारण मरकर वह चीवर के चीलर हो गये हैं, सात दिन बाद पुनः मर कर देवलोक में जायँगे।" यह बताते हुए भगवान् ने कहा—

अयसा'व मलं समुट्ठितं तदुट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिं ॥ ६ ॥

लोहे से उत्पन्न मल (मुर्चा) जैसे उसी लोहे को खा जाता है जिससे वह पैदा होता है, इसी तरह चंचल-चित्त पुरुष के अपने ही कर्म उसे दुर्गति को ले जाते हैं ॥ ६ ॥

जेतवन में श्रावस्ती-निवासी जब सारिपुत्र मोग्गलान के उपदेश सुन कर उनकी प्रशंसा करते तो लालुदायी स्थविर कहते—"मेरा उपदेश

सुनोगे, तो तुम मेरी भी प्रशंसा करोगे।" एक दिन नगरवासियों ने लालुदायी को भी धर्मासन पर बिठाया, तो उन्हें सूझा ही नहीं कि क्या कहें। टट्टी के बहाने धर्मासन से उठकर गये, तो असावधानी के कारण मैले पर गिर पड़े। यह हाल सुन भगवान् ने बताया—"लालुदायी का धर्मज्ञान अल्प है, और जो सीखा है उसका वह पाठ नहीं करता।" यह बताकर भगवान् ने कहा—

असज्झायमला मन्ता अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं ॥ ७ ॥

सस्वर पाठ न करना मंत्रों का मैल है, बुहार-झाड़ न करना मकान का मैल है, आलस्य सौंदर्य का मैल है, और असावधानी पहरेदार का मैल है ॥ ७ ॥

राजगृह के एक कुलपुत्र का विवाह ऐसी स्त्री के साथ हो गया जो व्यभिचारिणी थी। इससे वह बहुत लज्जित था। एक दिन उसने अपना दुख भगवान् से कहा, तो भगवान् ने अनभिरत-जातक की कथा सुना कर कहा—

मलित्थिया दुच्चरितं मच्छेरं ददतो मलं।
मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परम्हि च ॥ ८ ॥

स्त्री का मैल दुराचार है, दानी का मैल कृपणता है, पाप इस लोक और परलोक दोनो का मैल है ॥ ८ ॥

ततो मला मलतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवो ॥ ६ ॥

और मलों में भी सबसे बड़ा मल अविद्या एवं अज्ञान है। हे भिक्षुओ! इस अविद्या-रूपी मल को त्यागकर निर्मल बनो ॥ ६ ॥

सारिपुत्र स्थविर के एक शिष्य ने कहा कि वह वैद्य-कर्म करके जीविका चलावेगा। यह बात भगवान् तक पहुँचने पर उन्होंने कहा—

सुजीवं अहिरीकेन काकसूरेन धंसिना।
पक्खन्दिना पगब्भेन संकिलिट्ठेन जीवितं ॥ १० ॥

हिरीमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना ।
अलीनेन'प्पगब्भेन सुद्धाजीवेन पस्सता ॥ ११ ॥

पाप के प्रति निर्लज्ज, कौवे की तरह छीनने में शूर, पर-हित-विनाशक, पतित, उच्छृङ्खल और मलीन बनकर जीवन व्यतीत करना आसान है किंतु पाप के प्रति लज्जाशील, नित्य ही पवित्रता का विचार करते हुए, आलस्य और उच्छृङ्खलता-रहित, शुद्ध आजीविका के साथ विचारवान् बनकर जीवन व्यतीत करना कठिन है ॥ १०, ११ ॥

श्रावस्ती के प्रायः सभी उपासक पंचशीलों के केवल एक-एक शील का पालन करते थे और जो जिस शील का पालन करता था, उसे वह अत्यंत कठिन बताता था । यह विवाद भगवान् तक पहुँचा, तो उन्होंने कहा—

यो पाणमतिपातेति मुसावादञ्च भासति ।
लोके अदिन्नं आदियति परदारञ्च गच्छति ॥ १२ ॥
सुरामेरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति ।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो ॥ १३ ॥

जो मनुष्य हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, परस्त्री-गमन और मद्य-पान करता है, वह ऐसा करके इस संसार में ही अपनी जड़ खोदता है ॥ १२, १३ ॥

एवं भो पुरिस ! जानाहि पापधम्मा असञ्ञता ।
मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयुं ॥ १४ ॥

हे पुरुष ! ऐसा जानकर कि संयम-हीन पाप-कर्म सब ऐसे ही होते हैं, तू ऐसे कर्म कर कि लोभ और अधर्म चिर काल तक दुख में न डाले रहें ॥ १४ ॥

श्रावस्ती में एक द्वारपाल का बालक प्रव्रजित हुआ । उसका नाम 'तिस्स' रखा गया । वह दान करने में सदा दूसरों की निंदा और अपने घर की प्रशंसा किया करता था । एक दिन कुछ तरुण भिक्षु उसके गाँव में गये, तो ज्ञात हुआ वह झूठ ही अपने घर की दानशीलता की

प्रशंसा किया करता था। भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से बताई, तो भगवान् ने कहा—

ददन्ति वे यथासद्धं यथापसादनं जनो।
तत्थ यो मंकु भवति परेसं पानभोजने।
न सो दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति ॥ १५ ॥

लोग अपनी-अपनी श्रद्धा और प्रसन्नता के अनुसार दान देते हैं। जो दूसरों के खाने-पीने को देख असंतोष प्रकट करता है, उसे न दिन को शांति मिलती है, न रात को ॥ १५ ॥

यस्स च तं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं।
स वे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति ॥ १६ ॥

जिस मनुष्य में ऐसा भाव जड़-मूल से पूर्णतया उच्छिन्न हो गया है, वह दिन को भी शांति से रहता है और रात को भी ॥ १६ ॥

एक दिन जेतवन-विहार में पाँच उपासक धर्म-श्रवण करने आये, किंतु भगवान् के धर्मोपदेश के समय कोई ऊँघने लगा, कोई ऊपर देखने लगा। आनन्द स्थविर के पूछने पर कि ये लोग आपके उत्तम उपदेश को ठीक से सुन क्यों नहीं रहे, भगवान् ने उनके पूर्व-जन्मों की बातें बताकर कहा—"राग, द्वेष, मोह और तृष्णा में आबद्ध होने के कारण ये लोग धर्म-श्रवण नहीं कर सकते।"—

नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी ॥ १७ ॥

राग के समान आग नहीं, द्वेष के समान ग्रह (भूत) नहीं, मोह के समान जाल नहीं और तृष्णा के समान नदी नहीं ॥ १७ ॥

एक समय भगवान् भद्दिय नगर के जातिया वन में विहार करते थे। यह सुन मेण्डक श्रेष्ठी भगवान् के दर्शनार्थ जाने लगा, तो तैर्थिकों ने उसे मार्ग में रोककर कहा—"तू क्रियावादी होता हुआ अक्रिया-वादी के पास क्यों जा रहा है?" किन्तु श्रेष्ठी रुका नहीं, सीधे भगवान् के पास पहुँच वन्दना कर एक ओर बैठ गया। भगवान् के उपदेश से

श्रेष्ठी स्रोतापन्न हो गया। अन्त में उसने तैर्थिकों द्वारा रोकने की बात बताई, तो भगवान् ने कहा—

सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथाभुसं।
अत्तनो पन छादेति कलिं'व कितवा सठो ॥ १८ ॥

दूसरों के दोष देखना आसान है किन्तु अपने दोष देखना कठिन है। मनुष्य दूसरों के दोषों को तो भूसे की तरह उड़ाता है किंतु अपने दोषों को ऐसे छिपाता हैं जैसे बेईमान जुआरी पाँसे को ॥ १८ ॥

जेतवन-विहार में एक उज्झानसञ्ञी स्थविर थे। वह सदा भिक्षुओं के दोष ही देखा करते थे। उनकी शिकायत होने पर भगवान् ने कहा—

परवज्जानुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसञ्ञिनो।
आसवा तस्स वड्ढन्ति आरा सो आसवक्खया ॥ १९ ॥

दूसरों के दोष देखने वाले तथा सदा दूसरों से चिढ़नेवाले के चित्त-मल सदा बढ़ते ही रहते हैं। ऐसा व्यक्ति आश्रवों के विनाश से दूर हटा रहता है ॥ १९ ॥

कुशीनगर में जिस समय भगवान् महापरिनिर्वाण-मंच पर लेटे थे, सुभद्र परिव्राजक तीन प्रश्न पूछने के लिए उनके पास आये। स्थविर आनंद ने "अब असमय है" कहकर उन्हें रोका, किंतु परम कारुणिक भगवान् ने उन्हें आने दिया। परिव्राजक ने पूछा—"हे महाश्रमण! क्या आकाश में पद है? क्या बुद्ध-शासन से बाहर श्रमण हैं? क्या संस्कार शाश्वत हैं?" शास्ता ने कहा—

आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
पपञ्चाभिरता पजा निप्पपञ्चा तथागता ॥ २० ॥

आकाश में पद (चिह्न) नहीं, (आर्य अष्टांगिक मार्ग से) बाहर श्रमण नहीं, लोग प्रपञ्च में लगे रहते हैं किन्तु तथागत प्रपञ्च-रहित हैं ॥ २० ॥

आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे ।
सङ्खारा सस्सता नत्थि नत्थि बुद्धानमिञ्जितं ॥ २१ ॥

आकाश में चिह्न नहीं है, (बुद्ध-शासन से) बाहर श्रमण नहीं हैं, संस्कार शाश्वत नहीं हैं और बुद्धों में चंचलता नहीं है ॥ २१ ॥

१९—धम्मट्ठवग्गो

एक दिन भिक्षु लोग गाँव में भिक्षाटन करके श्रावस्ती के उत्तर द्वार से नगर के बीच होकर आ रहे थे कि अचानक पानी बरसने के कारण विनिश्चय-शाला में चले गये। वहाँ विनिश्चय-अमात्य (न्यायाधीश) लोग घूस लेकर सत्य को झूठ और झूठको सत्य बनाने पर विचार कर रहे थे। भिक्षुओं ने यह बात भगवान् को बताई, तो भगवान् ने कहा—

न तेन होति धम्मट्ठो येनत्थं सहसा नये ।
यो च अत्थं अनत्थञ्च उभो निच्छेय्य पण्डितो ॥ १ ॥
असाहसेन धम्मेन समेन नयती परे ।
धम्मस्स गुत्तो मेधावी धम्मट्ठो'ति पवुच्चति ॥ २ ॥

बिना समुचित विचार किये जो सहसा किसी बात का निश्चय करता है, वह धर्म में स्थित नहीं कहलाता। जो पण्डित अर्थ-अनर्थ-और सच-झूठ दोनो का भली भाँति विचार कर धीर-भाव से निष्पक्ष न्याय करता है, वही मेधावी धर्म में स्थित न्यायाधीश कहलाता है ॥ १, २ ॥

छःवर्गीय वज्जिय भिक्षु अपने को शांत और पण्डित समझते थे और भोजन करते समय, विहार और गाँवों में, दूसरे भिक्षुओं पर अपनी जूठन डालते थे। यह शिकायत होने पर भगवान् ने कहा—

न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति ।
खेमी अवेरी अभयी पण्डितो'ति पवुच्चति ॥ ३ ॥

बहुत बोलने से कोई पण्डित नहीं होता। जो क्षेमवान, अवैरी और निर्भय होता है, वही पण्डित कहा जाता है ॥ ३ ॥

एकुदान भिक्षु अर्हत् थे और जंगल में अकेले रहते थे। उन्हें एक ही उदान याद था, परन्तु जब उसे सुनाते, तो जंगल गूँज उठता। एक दिन उनके यहाँ दो विद्वान् भिक्षु आये जिनके साथ अनेक शिष्य थे। एकुदान भिक्षु ने उनका अभिनन्दन किया और उनसे धर्मासन पर विराजमान होकर उपदेश करनेकी प्रार्थना की। किंतु उनके उपदेश पर वनवासी देवताओं ने साधुकार नहीं किया। तब उन्होंने एकुदानजी से उपदेश करने को कहा। एकुदान के उपदेश पर 'साधु-साधु' की ध्वनि से जंगल गूँज उठा। यह देख शिष्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने जेतवन आकर भगवान् से शंका प्रकट की, तो भगवान् ने कहा—

न तावता धम्मधरो यावता बहु भासति।
यो च अप्पम्पि सुत्वान धम्मं कायेन पस्सति।
स वे धम्मधरो होति यो धम्मं नप्पमज्जति ॥ ४ ॥

बहुत बोलने से कोई धर्मधर नहीं होता। थोड़ा भी धर्म सुनकर जो उसके अनुसार काया से आचरण करता है तथा जो धर्म में प्रमाद नहीं करता, वही धर्म-ग्रन्थों का ज्ञाता 'धर्मधर' है ॥ ४ ॥

लकुण्टक भद्दिय नाटे कद के स्थविर थे। जंगल से जेतवन में भगवान् के दर्शनार्थ आये हुए भिक्षुओं ने उन्हें देखकर समझा कोई श्रामनेर है। भगवान् ने उनके भ्रम-निवारणार्थ कहा—

न तेन थेरो होति येन'स्स पलितं सिरो।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णो'ति वुच्चति ॥ ५ ॥

सिर के बाल सफेद हो जाने-मात्र से कोई स्थविर (वृद्ध) नहीं होता। जिसकी केवल आयु-मात्र परिपक्व हो गई है, वह व्यर्थ ही वृद्ध कहलाता है ॥ ५ ॥

यम्हि सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्ञमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो थेरो इति पवुच्चति ॥ ६ ॥

जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम है, वही विगत-मल पुरुष धीर और स्थविर कहलाता है ॥ ६ ॥

एक वार जेतवन-विहार में दहर-भिक्षुओं और श्रामनेरों में धर्मचर्या एवं चीवर आदि के रँगने के सम्बन्ध में विवाद हुआ और यह विवाद भगवान् तक पहुँच गया। इस पर भगवान् ने कहा—

न वाक्करणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा।
साधुरूपो नरो होति इस्सुकी मच्छरी सठो ॥ ७॥
यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं।
स वन्तदोसो मेधावी साधुरूपो'ति वुच्चति ॥ ८॥

यदि वह ईर्ष्यालु, मत्सरी और शठ है, तो केवल वक्ता होने या सुन्दर रूप बना लेने से कोई मनुष्य साधु-रूप नहीं होता। जिस मनुष्य में ये दोष जड़-मूल से नष्ट हो गये हैं तथा जो दोष-रहित और मेधावी है, वही साधु-पुरुष कहलाता है ॥ ७, ८ ॥

हत्थक भिक्षु बड़े विवादी थे। वह शास्त्रार्थ के लिए तैर्थिकों को ललकारा ही करते थे। भगवान् ने उन्हें बुलाकर कहा—

न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिकं भणं।
इच्छालोभसमापन्नो समणो किं भविस्सति? ॥ ९॥
योच समेति पापानि अणुं थूलानि सब्बसो।
समितत्ता हि पापानं समणो'ति पवुच्चति ॥ १०॥

जो व्रतहीन और मिथ्यावादी है, वह केवल पण्डित होने से श्रमण नहीं होता। इच्छाओं से भरा हुआ और लोभी मनुष्य क्या श्रमण बनेगा? जो छोटे-बड़े पापों का सर्वथा शमन करनेवाला है, वह पापों का शमन-कर्ता होने के कारण ही श्रमण कहलाता है ॥ ९, १० ॥

किसी दूसरे धर्म में प्रव्रजित हो एक ब्राह्मण भगवान् के पास आकर बोला—"भो गौतम! मैं भी आपके भिक्षुओं की तरह भिक्षा माँगकर खाता हूँ, मुझे भी भिक्षु कहिए।" भगवान् ने कहा—

न तेन भिक्खू [सो] होति यावता भिक्खते परे।
विस्स धम्मं समादाय भिक्खू होति न तावता ॥ ११॥

योऽध पुञ्ञञ्च पापञ्च वाहित्वा ब्रह्मचरियवा ।
सङ्खाय लोके चरति स वे भिक्खू'ति वुच्चति ॥ १२ ॥

दूसरों के पास जाकर भिक्षा माँगने-मात्र से कोई भिक्षु नहीं होता, न वही भिक्षु होता है जो तमाम बुरे कर्मों को पकड़े हुए है। जो पुण्य और पाप से परे हो, ब्रह्मचारी बन, ज्ञान के साथ लोक में विचरता है, वही भिक्षु कहा जाता है ॥ ११, १२ ॥

भिक्षु लोग जब किसी गृहस्थ के यहाँ भोजन करते, तो भोजनोपरान्त सविधि दानानुमोदन करते थे, किन्तु तैर्थिक लोग खाली 'सुखं होतु' कहकर चल देते थे। इस कारण जब उनकी निंदा होती, तो कहते—"हम लोग मुनि हैं; मौन रहते हैं, गौतम के शिष्य बकवासी हैं।" यह बात जब भगवान् तक पहुँची, तो उन्होंने कहा—

न मोनेन मुनी होति मुल्हरूपो अविद्दसु ।
यो च तुलं'व पग्गय्ह वरमादाय पण्डितो ॥ १३ ॥
पापानि परिवज्जेति स मुनी तेन सो मुनि ।
यो मुनाति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति ॥ १४ ॥

कोई मूढ़ और अविद्वान् व्यक्ति केवल मौन रहने-मात्र से मुनि नहीं होता। जो पंडित तुला की भाँति तोलकर उत्तम तत्व को ग्रहण करके पापों का परित्याग करता है, वही यथार्थ में मुनि है। क्योंकि वह दोनों लोकों का मनन करता है, इसीलिए मुनि कहा जाता है ॥ १३, १४ ॥

श्रावस्त में एक महाशय बंसी लगाकर मछली पकड़ता और अपने को 'आर्य' कहता था। एक दिन भगवान् के सामने भी उसने अपने को आर्य कहा। तब भगवान् ने कहा—

न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति ।
अहिंसा सब्बपाणानं अरियो'ति पवुच्चति ॥ १५ ॥

वह व्यक्ति आर्य नहीं होता जो प्राणियों की हिंसा करता है। जो किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता, वही आर्य होता है ॥ १५ ॥

जेतवन-विहार में बहुत-से भिक्षुओं को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ

कि हम लोग शील-सम्पन्न और समाधि-रत हैं, जब चाहेंगे निर्वाण प्राप्त कर लेंगे। इन भिक्षुओं को संबोधित कर भगवान् ने कहा—

न सीलब्बतमत्तेन बाहुसच्चेन वा पुन।
अथवा समाधिलाभेन विविच्चसयनेन वा ॥ १६ ॥
फुसामि नेक्खम्मसुखं अपुथुज्जनसेवितं।
भिक्खू! विस्सासमापादि अप्पत्तो आसवक्खयं ॥ १७ ॥

भिक्षुओं! शीलवान् होने से, व्रती होने से, बहुश्रुत होने से, समाधिलाभी होने से अथवा एकान्तवासी होने से या ऐसा सोचने से कि प्रथकूजन मूढ़ जिसका सेवन नहीं कर सकते, मैं उस नैष्कर्म्य-सुख का आनन्द ले रहा हूँ (इति नहीं होती); जब तक आश्रवों (चित्त-मलों) का क्षय नहीं कर लेते तब तक चैन न लो ॥ १६, १७ ॥

२०—मग्गवग्गो

एक बार जेतवन में बहुत-से भिक्षु चारिका से आकर बातें कर रहे थे कि अमुक गाँव का रास्ता अच्छा है, अमुक का टेढ़ा कँकरीला। इनकी बातें सुन भगवान् ने कहा—"भिक्षुओं! ये सब तो सांसारिक मार्ग हैं, भिक्षुओं का मार्ग तो आर्य-मार्ग है"—

मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा।
विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानञ्च चक्खुमा ॥ १ ॥
एसो'व मग्गो नत्थ'ञ्ञो दस्सनस्स विसुद्धिया।
एतं हि तुम्हे पटिपज्जथ मारस्सेतं पमोहनं ॥ २ ॥

मार्गों में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है, सत्यों में चार आर्य-सत्य श्रेष्ठ हैं, धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है तथा मनुष्यों में 'चक्षुमान' (आँख वाला बुद्ध) श्रेष्ठ है। दर्शन या ज्ञान की विशुद्धि के लिए यही मार्ग है, दूसरा नहीं। इसी पर तुम आरूढ़ हो जाओ। यही मार को मूर्च्छित करने वाला है ॥ १, २ ॥

एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खस्सन्तं करिस्सथ ।
अक्खातो वे मया मग्गो अञ्ञाय सल्लसन्थनं ॥ ३ ॥

इस मार्ग पर आरूढ़ होकर तुम दुःखों का अन्त कर सकोगे। संसार-दुःख को स्वयं शल्य-समान समझकर मैंने यह मार्ग कहा है ॥ ३ ॥

तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता ।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति झायिनो मारबन्धना ॥ ४ ॥

इसके लिए उद्योग तुम्हें ही करना है। तथागत का काम तो केवल मार्ग को बता देना है। उसके अनुसार मार्ग पर आरूढ़ होकर ध्यान-निरत पुरुष मार के बंधन से मुक्त हो जायँगे ॥ ४ ॥

एक बार जेतवन में भगवान् के पास बहुत-से ऐसे भिक्षु पुनः कर्मस्थान ग्रहण करने आये जो एक बार कर्मस्थान ग्रहण करके अरण्य में गये थे और उन्हें अपने में कोई विशेषता नहीं दिखाई दी। भगवान् ने उन्हें पूर्व-जन्म में अनित्य की भावना किया हुआ देखकर कहा—

सब्बे सङ्खारा अनिच्चा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥ ५ ॥

"सभी संस्कार अनित्य हैं"—इस बात को जब प्रज्ञा से देख लेता है, तभी मनुष्य को दुःखों से विराग उत्पन्न होता है। यही विशुद्धि का मार्ग है ॥ ५ ॥

सब्बे सङ्खारा दुक्खा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥ ६ ॥

"सभी संस्कार दुःख हैं"—इस बात को जब प्रज्ञा से देख लेता है, तभी दुःखों से विराग उत्पन्न होता है। यही विशुद्धि का मार्ग है ॥ ६ ॥

सब्बे धम्मा अनत्ता'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥ ७ ॥

"सभी धर्म (स्कंध और पदार्थ) अनात्म हैं"—इस बात को जब प्रज्ञा से देख लेता है, तभी मनुष्य को दुःखों से विराग उत्पन्न होता है। यही विशुद्धि का मार्ग है ॥ ७ ॥

एक बार जेतवन-विार में बहुत-से कुल-पुत्र आये और भगवान् से कर्मस्थान ग्रहणकर सब तो वन में चले गये, एक नहीं गया। कुछ दिन बाद अर्हत्व प्राप्त कर वे विहार में आये, तो भगवान् ने उनका सादर स्वागत किया। यह देख विहारवाले ने समझा कि शायद मैंने अर्हत्व प्राप्त नहीं किया, इसीलिए भगवान् मुझसे नहीं बोलते हैं। अतः रातभर में अर्हत्व प्राप्त कर लेने के लिए वह सारी रात जागकर चंक्रमण करने लगा, किंतु नींद के झोंके में एक पत्थर से ठोकर खाकर गिर पड़ा और उसकी टाँग टूट गई, तब वह बहुत जोर से चिल्ला उठा। जब यह मामला भगवान् के समाने पेश हुआ, तो भगवान् ने कहा—

उट्ठानकालम्हि अनुट्ठहानो युवा बली आलसियं उपेतो ।
संसन्नसङ्कप्पमनो कुसीतो पञ्ञाय मग्गं अलसो न विन्दति ॥८॥

जो उद्योग करने के समय उद्योग नहीं करता, युवा और बलवान् होकर भी आलस्य से युक्त रहता है, जिसका मन व्यर्थ के संकल्पों से भरा है, तथा जो दीर्घसूत्री है, ऐसा आलसी व्यक्ति प्रज्ञा के मार्ग को नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ८ ॥

एक दिन महामोग्गलायन स्थविर ने लक्खण स्थविर के साथ गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुए एक सूकर-प्रेत को देखा, जिसका शरीर बहुत लम्बा मनुष्य-जैसा था, किन्तु सिर शूकर-जैसा। उसके मुँह के बालों से कीड़े झड़ रहे थे। इसकी चर्चा होने पर भगवान् ने बताया—"इस सत्व ने कश्यप बुद्ध के समय भिक्षु होकर दो महास्थविरों को आपस में लड़ाकर विहार से भगा दिया था, उसी पाप के कारण एक बुद्धान्तर अबीचि-नरक में रहकर अब यह दुःख भोग रहा है। यह बता कर भिक्षुओं को निष्पाप रहने का उपदेश देते हुए भगवान् ने कहा—

वाचानुरक्खी मनसा सुसंवुतो कायेन च अकुसलं न कयिरा ।
एते तयो कम्मपथे विसोधये आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं ॥ ९ ॥

भिक्षु को चाहिए कि वाणी की रक्षा करे, मन से संयमी रहे और काया से कभी पाप न करें। मन, वचन और काया तीनो कर्म-पथों को

विशुद्ध रखकर ऋषि अर्थात् बुद्ध के बताये धर्म का सेवन करे ॥ ६ ॥

पोठिलजी शास्त्र एवं धर्म-प्रवक्ता थे किन्तु मार्ग-फल प्राप्त न होने से भगवान् उन्हें 'तुच्छ पोठिल' कहते थे। भगवान् से इस प्रकार संबोधित होने से उन्हें संवेग पैदा हुआ और वे अरण्य में चले गये। किन्तु वन में किसी अर्हत ने उन्हें आश्रय नहीं दिया। अन्त में वे एक सात वर्ष की आयुवाले श्रामनेर के निकट गये। श्रामनेर ने कहा—"यदि तुम मेरे आज्ञाकारी रहोगे, तो मैं तुम्हें आश्रय दूँगा।" पोठिल के स्वीकार करने पर परीक्षार्थ श्रामनेर ने उन्हें चीवर पहने पोखर के पानी में प्रवेश करने को कहा, तो पोठिल अविलंब प्रवेश करने लगे। श्रामनेर ने रोककर उन्हें आश्रय दिया। भगवान् ने अपनी दूर-श्रवण और दूरदर्शन-शक्ति से पोठिल की दशा देख भिक्षुओं से कहा—

योगा वे जायती भूरि अयोगा भूरिसङ्खयो।
एतं द्वेधापथं ञत्वा भवाय विभवाय च।
तथ'त्तानं निवेसेय्य यथा भूरि पवड्ढति ॥ १० ॥

योग के अभ्यास से भूरि अर्थात् प्रज्ञा उत्पन्न होती है, और योग न होने से प्रज्ञा का क्षय होता है। उन्नति और विनाश के इन दोनो मार्गों को जान अपने को इस प्रकार रखे जिससे प्रज्ञा की वृद्धि हो ॥ १० ॥

जेतवन में बहुत-से बूढ़े मनुष्य प्रव्रजित हो एक ओर कुटी बनाकर एकसाथ रहते थे। वे दिन-रात गप्पें लड़ाया करते थे। उनमें एक की स्त्री प्रायः मधुर भोजन बनाकर दे जाया करती थी। संयोग से वह स्त्री मर गई, तो ये बुढ़वे एक-दूसरे को पकड़कर रोने लगे। दिव्य चक्षु से उनकी यह दशा देख भगवान् ने कहा—

वनं छिन्दथ मा रुक्खं वनतो जायती भयं।
छेत्त्वा वनञ्च वनथञ्च निब्बना होथ भिक्खवो! ॥ ११ ॥
यावं हि वनथो न छिज्जति अनुमत्तोपि नरस्स नारिसु।
पटिबद्धमनो व ताव सो वच्छो खीरपको'व मातरि ॥ १२ ॥

भिक्षुओ! इस राग-रूपी वन को काटो, वृक्ष को नहीं। राग-रूपी

वन से भय उत्पन्न होता है। वन और झाड़ी को काटकर निर्वाण को प्राप्त हो जाओ। जब तक स्त्रियों में पुरुष की अखंड कामना रहती है, तब तक वह पुरुष उसी तरह बँधा रहता है जैसे दूध पीनेवाला बछड़ा अपनी माता में आबद्ध रहता है ॥ ११, १२ ॥

सारिपुत्र ने जेतवन में एक सोनार को प्रव्रजित करके एक कर्मस्थान बताया, किंतु चार मास उद्योग करने पर भी जब उसे कोई विशेषता नहीं प्राप्त हुई, तो वे उसे लेकर भगवान् के पास गये। भगवान् ने उसको पूर्व-जन्मों में लगातार सोनार-कुल में जन्म लेते देखकर, अपने ऋद्धिबल से एक सुवर्ण-पद्म उत्पन्न करके दिया और कहा, इसे बालुका पर रखकर भावना करो। आदेशानुसार भावना करके उसने चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर लिया। तब भगवान् के अधिष्ठान से वह कमल मुरझाने लगा। उसे मुरझाते देख उसे अनित्यता की भावना होने लगी। उसकी चित्त-वृत्ति देखकर भगवान् ने उसके आगे दिव्य प्रकाश कर दिया, और सामने खड़े होकर उपदेश दिया—

उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं'व पाणिना ।
सन्तिमग्गमेव ब्रूहय निब्बानं सुगतेन देसितं ॥ १३ ॥

शरद-काल के कुमुद की भाँति आत्मस्नेह को उच्छिन्न कर डालो, और सुगत बुद्ध द्वारा उपदिष्ट शान्ति-मार्ग निर्वाण का आश्रय ग्रहण करो ॥ १३ ॥

वाराणसी का एक धनवान् बनिया कुसुम और लाल रंग में रँगे वस्त्रों को बैलगाड़ियों पर लादकर श्रावस्ती आया, और नदी के किनारे डेरा डाला। वह स्थान जाड़ा, गर्मी, बरसात, तीनों ऋतुओं के लिए आनन्ददायी प्रतीत होने के कारण उसने वहीं रहने का इरादा कर लिया। भगवान् उसका संकल्प देख मुसकाये। मुसकाने का कारण पूछने पर भगवान् ने आनन्द स्थविर को बताया—"आनंद! बनिये की आयु अब केवल सात दिन की है, और वह यहाँ सदा निवास का मंसूबा बाँध रहा है।" भगवान् से आज्ञा ले आनन्द स्थविर बनिये के पास गये, तो

उसने उनका सादर भोजन-सत्कार किया। भोजनोपरान्त आनन्द स्थविर ने उसे यह बात भी बता दी। भयभीत वणिक् भगवान् की शरण में आया। भगवान् ने उपदेश देते हुए कहा—

इध वस्सं वसिस्सामि इध हेमन्तगिम्हिसु ।
इति बालो विचिन्तेति अन्तरायं न बुज्झति ॥ १४ ॥

मूढ़ मनुष्य अपने जीवन के विघ्न को नहीं समझ पाता, किंतु यह सोचता है कि मैं वर्षा में यहाँ बसूँगा, शीत और ग्रीष्म में यहाँ निवास करूँगा ॥ १४ ॥

किसा गौतमी की कथा सहस्सवग्ग में आई है। उसने जब सारा नगर घूमकर सरसों का एक दाना भी किसी ऐसे घर से नहीं पाया जिसमें कोई मरा न हो, तब भगवान् ने उसे मृत्यु की शक्तिमत्ता बताते हुए कहा था—

तं पुत्तपसुसम्मतं व्यासत्तमनसं नरं ।
सुत्तं गामं महोघो'व मच्चु आदाय गच्छति ॥ १५ ॥

सोते हुए गाँव को जैसे बाढ़ बहा ले जाती है, वैसे ही पुत्र और पशुओं में आसक्त और लिप्त मनुष्य को मौत उसकी इच्छाओं के पूर्ण हुए विना ही उठा ले जाती है ॥ १५ ॥

इसी प्रकार पटाचारा की कथा भी सहस्सवग्ग में आई है। उसे भी उपदेश देते हुए भगवान् ने इन गाथाओं को कहा था—

न सन्ति पुत्ता ताणाय न पिता नापि बन्धवा ।
अन्तकेनाधिपन्नस्स नत्थि ञातिसु ताणता ॥ १६ ॥

न पुत्र रक्षा कर सकते हैं, न पिता और न भाई-बंधु। जब मौत आती है, तो जातिवाले रक्षक नहीं हो सकते ॥ १६ ॥

एतमत्थवसं ञत्वा पण्डितो सीलसंवुतो ।
निब्बाण-गमनं मग्गं खिप्पमेव विसोधये ॥ १७ ॥

इस बात को जानकर पंडित पुरुष को चाहिए कि शील-संपन्न हो निर्वाण की ओर जानेवाले मार्ग को शीघ्र स्वच्छ कर ले ॥ १७ ॥

२१—पकिरणकवग्गो

एक समय वैशाली में अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी एवं अमानवीय उपद्रवों के कारण जनता बहुत त्रसित और भयभीत थी। इस संकट के निवारणार्थ लिच्छवी-नरेश भिक्षु-संघ-सहित भगवान् को राजगृह से वैशाली लाये। उपद्रवों की शांति के लिए आनन्दस्थविर ने भिक्षुओं-सहित नगर-चंक्रमण करके सारी रात रतनसुत्त का अखंड पाठ किया। इसके फल से सारे उपद्रव शांत हुए, पानी बरसा और अमानवीय भय दूर हुए। जनता सुखी हुई। जब भगवान् गंगा पार करके वेणुवन-विहार जाने को हुए, तो वैशाली और राजगृह दोनो राज्यों की जनता और राजाओं ने भगवान् के सम्मानार्थ मार्ग को वन्दनवार-पताका आदि से खूब सजाया और अभूतपूर्व समारोह से भिक्षुवों के साथ भगवान् को बिदा किया। इस सम्मान का कारण पूर्व-जन्म में "सुसीम" नामक प्रत्येक बुद्ध के चैत्य की पूजा का फल बताते हुए भगवान् ने कहा—

मत्तासुखपरिच्चागा पस्से चे विपुलं सुखं।
चजे मत्तासुखं धीरो सम्पस्सं विपुलं सुखं॥ १॥

थोड़ी सेवा और थोड़े सुख के परित्याग से यदि बहुत अधिक सुख की संभावना हो, तो बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि अधिक सुख-लाभ के लिए थोड़े सुख को त्याग दे॥ १॥

ऐसा ही उपदेश वेणुवन में किसी मनुष्य को भगवान् ने दिया—

परदुक्खूपदानेन यो अत्तनो सुखमिच्छति।
वेरसंसग्गसंसट्ठो वेरा सो न पमुच्चति॥ २॥

जो दूसरों को दुःख देकर अपने लिए आराम चाहता है, वह वैर के संसर्ग में पड़ा व्यक्ति वैर से मुक्त निर्वैर नहीं हो पाता॥ २॥

भद्दिय-निवासी भिक्षु ध्यान-भावना छोड़कर सारा समय पादुका आदि बनाने में लगे रहते थे। उन्हें सचेत करते हुए भगवान् ने कहा—

यं हि किच्चं तदपविद्धं अकिच्चं पन कयिरति ।
उन्नलानं पमत्तानं तेसं वड्ढन्ति आसवा ॥ ३ ॥

जो मनुष्य कर्तव्य-कर्म को छोड़कर अकर्तव्य कर्म करने लगता है, ऐसे बड़े मलवाले प्रमादियों के आश्रव (चित्त-मल) बढ़ते हैं ॥ ३ ॥

येसञ्च सुसमारद्धा निच्चं कायगता सति ।
अकिच्चन्ते न सेवन्ति किच्चे सातच्चकारिनो ।
सतानं सम्पजानानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥ ४ ॥

जिन्हें इस क्षणभंगुर मल-पूर्ण काया की कायगता-स्मृति रहती है, वे अकर्तव्य कर्मों को न करके निरन्तर कर्तव्य कर्मों को ही करते रहते हैं । इस प्रकार जो स्मृति और चेतना (संप्रजन्य) से सदा युक्त रहते हैं, उन पुरुषों के आश्रव क्षय हो जाते हैं ॥ ४ ॥

एक दिन जेतवन-विहार में बहुत-से भिक्षुओं को सम्बोधन करते हुए भद्दिय स्थविर लकुण्टक की ओर संकेत करते हुए भगवान् ने कहा—

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये ।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो ॥ ५ ॥

जो तृष्णा-रूपी माता, अहंकार-रूप पिता, शाश्वतवाद और उच्छेद-वाद रूप दो क्षत्रिय राजाओं तथा राग आदि उनके अनुचरों-सहित रूप वेदना आदि उपादान-रूपी सारे राष्ट्र को मार डालता है, वही क्षीणाश्रव पुरुष 'ब्राह्मण' हो जाता है ॥ ५ ॥

मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च सोत्थिये ।
वेय्यग्घपञ्चमं हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो ॥ ६ ॥

माता, पिता, दो श्रोत्रिय राजाओं तथा पाँच व्याघ्रों को मारकर ही मनुष्य निष्पाप 'ब्राह्मण' हो जाता है ॥ ६ ॥

[तात्पर्य यह कि भगवान् आश्रव-रहित निष्पाप पुरुष को ही ब्राह्मण कहते हैं । किंतु ऐसा ब्राह्मण तभी हो सकता है जब संसार की जननी तृष्णा एवं संसार के पिता अहंकार, संसार के दो राजाओं शाश्वतवाद और

उच्छेदवाद तथा ज्ञान के आवरण-रूप पंचोपादान स्कंध-रूपी पाँचों व्याघ्रों को मार डाले ।]

राजगृह में गाड़ी पर लकड़ी लादकर बेचनेवाले मनुष्य के दो बेटे थे, जो "नमो बुद्धस्स" कहा करते थे । वे एक बार राजा बिम्बिसार के यहाँ से सोने की थाली चुराने के झूठे अपराध में गिरफ्तार किये जाने पर राजा के सामने पेश हुए, तो निरंतर 'नमो बुद्धस्स' कहते हुए उन्होंने सब सच-सच बता दिया । राजा प्रभावित हो लड़कों को भगवान् के पास लाये और सब सुनाकर भगवान् से पूछा—"भन्ते ! बुद्धानुस्मृति ही मनुष्य की रक्षक होती है या धम्मानुस्मृति आदि भी ?" भगवान् ने कहा—"महाराज ! जिनका चित्त छः स्मृतियों में अभ्यस्त रहता है, उन्हें रक्षा के लिए अन्य किसी मंत्र की आवश्यकता नहीं होती ।" यह बताकर भगवान् ने कहा—

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं बुद्धगता सति ॥ ७ ॥
सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति ॥ ८ ॥
सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं सङ्घगता सति ॥ ९ ॥

जिनको दिन-रात बुद्ध की स्मृति बनी रहती है, वे गौतम बुद्ध के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं । जिनको दिन-रात धर्म की स्मृति बनी रहती है, वे गौतम के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं । जिनको दिन-रात संघ की स्मृति बनी रहती है, वे गौतम के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं ॥ ७,८,९ ॥

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं कायगता सति ॥ १० ॥
सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च अहिंसाय रतो मनो ॥ ११ ॥

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च भावनाय रतो मनो ॥ १२ ॥

जिन्हें दिन-रात कामगता स्मृति बनी रहती है, वे गौतम के शिष्य सदा कामगता-स्मृति के साथ सोते और जागते हैं । जिनका मन दिन-रात अहिंसा में रत रहता है, वे गौतम के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं । जिनका मन दिन-रात ध्यान-भावना में रत रहता है, वे गौतम के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते रहते हैं ॥ १०, ११, १२ ॥

एक वज्जिय-पुत्र वनवासी भिक्षु नगर में आश्विन-पूर्णिमा-उत्सव में बजते हुए बाजों को सुनकर भिक्षु-जीवन से उदास होने लगे । उन्हें वैशाली के विहार में पाँच दुःखों को बताने के लिए भगवान् ने कहा—

दुप्पब्बज्जं दुरभिरमं दुरावासा घरा दुखा ।
दुक्खोऽसमानसंवासो दुक्खानुपतितद्धगू ।
तस्मा न च अद्धगू सिया न च दुक्खानुपतितो सिया ॥ १३ ॥

कष्टपूर्ण प्रव्रज्या में रत होना दुष्कर है, न रहने योग्य घर दुःखद है, अपमान के साथ बसना दुःखद है, सांसारिक मार्ग का बटोही होना दुःखद है । इसलिए संसार-मार्ग का बटोही न बने और न दुःखों में पतित होवे ॥ १३ ॥

एक दिन जेतवन-विहार में चित्त गृहपति की प्रशंसा करते हुए भगवान् ने कहा—

सद्धो सीलेन सम्पन्नो यसोभोगसमप्पितो ।
यं यं पदेसं भजति तत्थ तत्थेव पूजितो ॥ १४ ॥

श्रद्धावान्, शीलवान्, यश और भोग से युक्त पुरुष जिस-जिस ध्यान में जाता है, वहीं-वहीं पूजित होता है ॥ १४ ॥

अनाथपिंडिक सेठ की लड़की चूल सुभद्रा उग्रनगर-निवासी जिस सेठ-पुत्र को ब्याही थी, वह नंगे साधुओं का भक्त था और चूल सुभद्रा को भी उन्हें प्रणाम करने को कहता था । चूल सुभद्रा लज्जा के कारण

जब नंगे साधुओं के सामने न जाती, तो सेठ उसे डाँटता और कहता—"तो तू अपने साधुओं को क्यों नहीं बुलाती है ?" अतः चूल सुभद्रा ने एक दिन पाँच सौ भिक्षुओं के भोजन की व्यवस्था कर, महल के ऊपर जा, जेतवन-विहार की ओर मुँह कर, पंचांग प्रणाम करके "भन्ते ! कल के लिए पाँच सौ भदन्त पुरुषों के साथ मेरा दान स्वीकार कीजिए।" कहकर आठ अंजली पुष्प आकाश में फेंके। वे पुष्प धर्म-सभा में उपदेश देते हुए भगवान् के सामने गिरे और परिचारक की भाँति खड़े हो गये। उसी समय अनाथपिंडिक ने भगवान् से निवेदन किया "भन्ते ! कल के लिए मेरा दान स्वीकार कीजिए।" भगवान् ने कहा—"गृहपति! कल के लिए मैं चूल सुभद्रा द्वारा निमंत्रित हूँ।" अनाथपिंडिक ने आश्चर्य से कहा—"भन्ते ! चूल सुभद्रा तो बीस योजन की दूरी पर है, उसने आपको कैसे निमंत्रित किया ?" भगवान् ने कहा—

दूरे सन्तो पकासेन्ति हिमवन्तो'व पब्बता ।
असन्तेत्थ न दिस्सन्ति रत्तिखित्ता यथा सरा ॥ १५ ॥

सन्त जन दूर होने पर भी हिमालय पर्वत की धवल चोटियों की भाँति प्रकाशते हैं, और असत् पुरुष पास में रहते हुए भी, रात में फेंके गये बाण की भाँति, दिखाई नहीं देते ॥ १५ ॥

[दूसरे दिन भगवान् ने पाँच सौ भिक्षुओं के साथ आकाश-मार्ग से जाकर चूल-सुभद्रा का दान ग्रहण किया।]

जेतवन-विहार में एक भिक्षु को अकेले बैठने, अकेले चंक्रमण करने और अकेले खड़े होने की आदत थी। उनकी बात भगवान् तक पहुँचने पर उनकी प्रशंसा करते हुए भगवान् ने कहा—

एकासनं एकसेय्यं एकोचरमतन्दितो ।
एको दमयमत्तानं वनन्ते रमितो सिया ॥ १६ ॥

एक ही आसन रखनेवाला, एक शय्या रखनेवाला, अकेला विचरनेवाला बन, आलस्य-रहित हो, अपने को दमन कर अकेला ही वनान्त में रमण करे ॥ १६ ॥

२२—निरयवग्गो

भगवान् के बढ़ते हुए प्रभाव से तैर्थिकों को संताप होता था। उन्होंने भगवान् और भिक्षु-संघ की बदनामी के लिए सुन्दरी नाम की परिव्राजिका के साथ अभिसंधि करके पहले यह प्रचार कराया कि श्रमण-गौतम उसके साथ रमिण करते हैं, बाद में उसे गुंडों द्वारा मरवाकर विहार में कहीं छिपा दिया, और उसकी हत्या का आरोप भिक्षुओं पर लगाकर तलाशी कराई और लाश बरामद करके बड़े धूम से उसकी अर्थी नगर में घुमाकर यह बदनामी कराई कि शाक्य-श्रमणों ने इस बेचारी को पहले भ्रष्ट किया और फिर हत्या कर दी। इसका फल यह हुआ कि भिक्षुओं को भिक्षाटन करना कठिन हो गया। यह सब सुनकर भगवान् ने कहा, यह बदनामी एक सप्ताह तक रहेगी। तुम लोग निंदा करनेवालों को यह सुनाओ—

अभूतवादी निरयं उपेति यो वापि कत्वा 'न करोमी' ति चाह।
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥ १ ॥

असत्य-वादी नरक में जाते हैं और वह भी नरक में जाता है जो करके "नहीं किया है" कहता है। दोनो ही प्रकार के नीच कर्म करने वाले मनुष्य मरकर समान दुर्गति को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

[जिन गुंडों ने सुन्दरी को मारा था, वे शराब के नशे में आपस में लड़ने लगे और सुन्दरी की हत्या की बात भी बक गये, जिससे वे गिरफ्तार हो गये, और उनके कबूलने से तैर्थिक भी पकड़े जाकर राजा के सामने पेश हुए। राजा ने उन्हें यह दण्ड दिया कि वे नगर भर में यह कहते हुए घूमें कि "शाक्य-भिक्षुओं का दोष नही है, दोष हमारा है; हम लोगों ने ही सुन्दरी को मरवाया था।" इससे भगवान् और भिक्षु-संघ की कीर्ति तो बढ़ गई; और तैर्थिकों से घृणा हो गई।]

एक दिन गृद्धकूट पर्वत पर स्थविर महामोग्गलायन ने ऐसे भिक्षुओं को देखा, जिनका शरीर, चीवर और कायाबंधन सब जल रहे थे। भगवान् ने उनके पूर्वकृत दुश्चरित्रों का वर्णन करते हुए कहा—

कासावकण्ठा बहवो पापधम्मा असञ्ञता ।
पापा पापेहि कम्मेहि निरयन्ते उप्पज्जरे ॥ २ ॥

कंठ में काषाय कपड़े डाले कितने ही असंयमी पापी हैं, जो अपने किये पाप-कर्मों से नरक में उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

भगवान् ने वैशाली में वग्गुमुदातीर-वासी भिक्षुओं का हाल सुना कि ऋद्धिमान् न होते हुए भी वे लोग ऋद्धियों का चमत्कार दिखाकर लोगों को प्रभावित करते हैं । भगवान् ने कहा—

सेय्यो अयोगुलो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो ।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो ॥ ३ ॥

असंयमी दुराचारी हो राष्ट्र का अन्न खाने से अग्निशिखा के समान तप्त लोहे के गोले का खाना अच्छा है ॥ ३ ॥

अनाथपिंडिक सेठ का खेम नाम का एक अत्यंत रूपवान् भांजा था । उसके रूप पर स्त्रियाँ मोहित रहती थीं, और वह भी पर-स्त्री-गमन में रत रहता था । सेठ उसे उपदेश दिलाने के लिए भगवान् के पास ले गये, तो उन्होंने उपदेश दिया—

चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो आपज्जती परदारूपसेवी ।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं निन्दं ततीयं निरयं चतुत्थं ॥ ४ ॥

पर-स्त्री-गमन करनेवाले प्रमादी पुरुष की चार गतियाँ होती हैं— पाप का लाभ, सुख से न सोना, तीसरे लोक में निंदा और चौथे परलोक में नरक की प्राप्ति ॥ ४ ॥

अपुञ्ञलाभो च गती च पापिका भीतस्स भीताय रती च थोकिका ।
राजा च दण्डं गरुकं पणेति तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥ ५ ॥

(अथवा) अपुण्य का लाभ, बुरी गति, भयभीत पुरुष की भयभीत स्त्री के साथ अत्यल्प रति, और राजदंड का भय । इसलिए मनुष्य को परस्त्री-गमन नहीं करना चाहिए ॥ ५ ॥

एक दिन जेतवन में एक भिक्षु ने तृण काटा । उसे देखकर दूसरे ने भी काटा । यह बात भगवान् तक पहुँची, तो उन्होंने उपदेश दिया —

कुसो यथा दुग्गहीतो हत्थमेवानुकन्तति ।
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं निरयायुपकड्ढति ॥ ६ ॥

जैसे ठीक से न पकड़ने से कुश ही हाथ को छेदता है, इसी तरह श्रामण्य ठीक से ग्रहण न करने पर वह नरक में ले जाता है ॥ ६ ॥

यं किञ्चि सिथिलं कम्मं सङ्किलिट्ठं च यं वतं ।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं नं तं होति महप्फलं ॥ ७ ॥

जो कर्म शिथिल है, जो व्रत मल-युक्त है, और जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध है, वह शुभ-फल-दायक नहीं होता ॥ ७ ॥

कयिरञ्चे कयिराथेनं दल्हमेनं परक्कमे ।
सिथिलो हि परिब्बाजो भिय्यो आकिरते रजं ॥ ८ ॥

यदि प्रव्रज्या-कर्म करना है, तो उसे करे, उसमें दृढ़ पराक्रम के साथ लग जाय। ढीला-ढाला श्रमण-धर्म अधिक मल बिखेरता है ॥ ८ ॥

श्रावस्ती के एक उपासक ने अपनी दासी से मैथुन किया। यह मालूम करके उसकी स्त्री ने दासी के नाक-कान छेद रस्सी से बाँधकर घर में बंद कर दिया और पति के साथ धर्म-श्रवण करने गई। भंडाफोड़ होने पर दासी ने सारी बात भगवान् को सुनाई, तो भगवान् ने कहा—

अकतं दुक्कतं सेय्यो पच्छा तपति दुक्कतं ।
कतञ्च सुकतं सेय्यो यं कत्वा नानुतप्पति ॥ ९ ॥

दुष्कृत और पाप का न करना अच्छा है। खोटा काम करनेवाला पीछे पछताता है। सुकृत और अच्छे काम का करना अच्छा है, अच्छा काम करके मनुष्य को पछताना नहीं पड़ता ॥ ९ ॥

एक बार जेतवन-विहार में किसी गाँव की सीमा पर वर्षावास पूरा करके कुछ भिक्षु आये और वहाँ हुई अपनी तकलीफ बयान की, तो भगवान् ने कहा—

नगरं यथा पच्चन्तं गुत्तं सन्तरबाहिरं ।
एवं गोपेथ अत्तानं खणो वे मा उपच्चगा ।
खणातीता हि सोचन्ति निरयम्हि समप्पिता ॥ १० ॥

जैसे सीमान्त का नगर भीतर-बाहर से खूब रक्षित होता है, उसी प्रकार अपने को सुरक्षित रखे। क्षण भर भी गाफिल न रहे। क्योंकि क्षण भर चूक कर जाने पर मनुष्य को नरक में पड़कर शोक करना पड़ता है ॥ १० ॥

एक बार जेतवन-विहार में निर्ग्रन्थ जैन साधु आये जो अपना आगे का अंग ढके हुए थे। भिक्षुओं और जैन-साधुओं में इस विषय पर कुछ विवाद हुआ। उस पर भगवान् ने कहा—

अलज्जिता ये लज्जन्ति लज्जिता ये न लज्जरे।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥ ११ ॥

लज्जा न करने की बात में जो लज्जा करते हैं और लज्जा के काम में जो लज्जा नहीं करते, वे मिथ्या धारणावाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त करते हैं ॥ ११ ॥

अभये च भयदस्सिनो भये च अभयदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥ १२ ॥

जो भय न करने के काम में भय देखते हैं और भय करने के काम में भय नहीं देखते, वे मिथ्या दृष्टि ग्रहण करनेवाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

जैन-श्रावकों ने अपने लड़कों को बौद्ध-भिक्षुओं को प्रणाम करने एवं बुद्ध-विहारों में जाने को मना कर दिया था। एक दिन खेलते हुए लड़कों को प्यास लगी, तो अपने साथी उपासकों के लड़कों के साथ पानी पीने के लिए विहार में चले गये और पानी पी प्रणाम कर भगवान् के पास बैठ गये। भगवान् ने उन्हें ऐसा उपदेश दिया कि वे अचल श्रद्धा-युक्त हो गये। जब ये लड़के अपने घरों में गये, तो उनके माँ-बाप बहुत झुंझलाये कि हमारे लड़कों को भिक्षुओं ने खराब कर दिया। पड़ोसियों के समझाने पर वे लोग ओलहना देने के लिए लड़कों को लेकर विहार में गये, तो भगवान् ने उनके मनोभावों को देखकर कहा—

अवज्जे वज्जमतिनो वज्जे चावज्जदस्सिनो ।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥ १३ ॥

जो निर्दोष में दोष-बुद्धि और दोष में निर्दोष-दृष्टि रखते हैं, वे प्राणी मिथ्या-दृष्टि को ग्रहण करके दुर्गति को प्राप्त करते हैं॥ १३ ॥

वज्जञ्च वज्जतो ञत्वा अवज्जञ्च अवज्जतो ।
सम्मादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं ॥ १४ ॥

दोष को दोष और अदोष को अदोष जानकर ही प्राणी सम्यक दृष्टि को ग्रहण कर सुगति को प्राप्त करते हैं ॥ १४ ॥

२३—नागवग्गो

भगवान् के कौशाम्बी में विहार करते समय एक बार मागंदिय ने कुछ ऐसे गुंडों को धन देकर तैयार किया जो नगर में भिक्षाटन के लिए गये भिक्षुओं को गुस्सा दिलानेवाली गालियाँ देते हुए उनके साथ जिधर-जिधर वे जाते, घूमते थे । मूर्ख, चोर, ऊँट, गधे, बैल, पशु इत्यादि कुशब्द बकते और कहते थे—"निकल जाओ हमारे नगर से ।" आनंद स्थविर ने यह बात कहकर भगवान् से दूसरी जगह चलने की प्रार्थना की । भगवान् ने कहा—"यदि दूसरी और तीसरी जगह भी ऐसा ही विवाद हो, तब कहाँ चलोगे ? आनन्द ! भागो मत, बदलो । यह विवाद केवल सात दिन रहेगा । तितिक्षा करो, सहन करो । जब तक विवाद उपशमित होकर परिस्थिति शान्त न हो जाय, दूसरी जगह जाने की इच्छा मत करो । अनंद ! तुम्हें ऐसा दृढ़-प्रतिज्ञ होना चाहिए—

अहं नागो'व सङ्गामे चापतो पतितं सरं ।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ॥ १ ॥

जैसे समर-भूमि में हाथी धनुष से निकले हुए तीरों को सहन करता है, वैसे ही दुःशीलों के मुँह से निकले हुए कटु-वचनों को मैं सहन करूँगा, क्योंकि संसार में दुःशील लोग ही अधिक हैं ॥ १ ॥

दन्तं नयन्ति समितिं दन्तं राजाभिरूहति ।
दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु यो'तिवाक्यं तितिक्खति ॥ २ ॥

दान्त सुशिक्षित हाथी को ही संग्राम-भूमि में ले जाते हैं, दान्त हाथी पर ही राजा सवार होता है। मनुष्यों में भी जो अपने आप को दमन किये हुए दान्त और श्रेष्ठ हैं, वे ही दूसरों के कटु-वाक्यों को सहन करते हैं ॥ २ ॥

वरं अस्सतरा दन्ता आजानीया च सिन्धवा ।
कुञ्जरा च महानागा अत्तादन्तो ततो वरं ॥ ३ ॥

खच्चर, अच्छी नसल के सिन्धी घोड़े और महानाग हाथी दान्त सुशिक्षित कर लिये जाने पर अच्छे हो जाते हैं। इसी तरह जिस पुरुष ने स्वयं अपना दमन कर लिया है, वह उनसे भी श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

एक भूतपूर्व महावत भिक्षु ने अचिरवती नदी के किनारे एक महावत को गलत स्थान पर भाला भोंककर हाथी को शिक्षित करते देखकर बताया कि अमुक स्थान पर भाला भोंकने से हाथी शीघ्र दान्त हो जायगा। महावत ने वैसा ही किया और हाथी शीघ्र ही शिक्षित हो गया। भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से कह दी, तो उन्होंने कहा—

न हि एतेहि यातेहि गच्छेय्य अगतं दिसं ।
यथाऽत्तना सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति ॥ ४ ॥

हाथी आदि वाहनों के शिक्षित कर लेने से, बिना गई दिशावाले निर्वाण की ओर नहीं जाया जा सकता। जिस पुरुष ने स्वयं अपना संयमन कर लिया है, वही वहाँ पहुँच सकता है ॥ ४ ॥

श्रावस्ती के एक धनवान् ब्राह्मण ने अपने चार पुत्रों को अपनी सारी संपत्ति बाँट दी। कुछ दिन बाद उसके लड़कों और बहुओं ने उसका ऐसा तिरस्कार किया कि ब्राह्मण भीख माँगकर खाने लगा। एक दिन वह भगवान् के पास गया और अपनी सारी विथा कह सुनाई, तो भगवान् ने उसे कुछ बातें बताकर उन्हें ब्राह्मणों की सभा में सुनाने को कहा। ब्राह्मण ने ऐसा ही किया। उसके पुत्र डर गये, उन्होंने पिता

के पैरों पर गिरकर क्षमा माँगी, और आजीवन पिता का भरण-पोषण करते रहने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार ब्राह्मण फिर अपने पुत्रों के साथ रहने लगा। एक दिन उसके पुत्रों ने भिक्षु-संघ-सहित भगवान् को निमंत्रित कर भोजन कराया। भोजनोपरांत उन लोगों ने कहा—"हम लोग अब अपने पिता का भरण-पोषण ठीक तरह से करते हैं।" भगवान् ने उन्हें 'मातुपोषक नागराज-जातक' की कथा सुनाकर कहा—

धनपालको नाम कुञ्जरो कटकप्पभेदनो दुन्निवारयो।
बद्धो कवलं न भुञ्जति सुमरति नागवनस्स कुञ्जरो ॥ ५ ॥

सेना को तितर-वितर करनेवाला, दुर्धर्ष धनपालक नामक हाथी, बन्धन में पड़ जाने पर कवल नहीं खाता, अपने हस्ति-वन को याद किया करता है ॥ ५ ॥

एक दिन कोशल-नरेश प्रसेनजित् बहुत खाकर धर्म-श्रवण करने आये, तो ऊँघ-ऊँघकर गिरने लगे, (पहले भी ऐसी कथा आ चुकी है) तब भगवान् ने उपदेश देते हुए कहा—

मिद्धी यदा होति महग्घसो च निद्दायिता सम्परिवत्तसायी।
महावराहो'व निवापपुट्ठो पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो ॥ ६ ॥

जो पुरुष आलसी, बहुत खानेवाला, निद्रालु, करवटें बदल-बदल कर सोनेवाला, और दाना देकर पाले हुए सुअर की तरह मोटा होता है, वह मन्द बार-बार गर्भ में पड़ता है ॥ ६ ॥

श्रावस्ती की एक उपासिका ने अपने पुत्र को श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित कराया। उसका नाम 'सानु श्रामनेर' रखा गया। वह उपदेश देने में बड़ा तेज़ था। किन्तु जवान होने पर काम-वासना के वशीभूत हो गृहस्थ हो जाने के लिए घर गया। वहाँ अपनी माता के उपदेश से सचेत हो गृहस्थ होने का विचार त्यागकर विहार आया, और उसकी उपसंपदा हुई। भगवान् ने उसे चित्त-निग्रह के उत्साह को बढ़ानेवाला उपदेश दिया—

इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं येनिच्छकं यत्थ कामं यथासुखं।
तदज्ज'हं निग्गहेस्सामि योनिसो हत्थिप्पभिन्नं विय अङ्कुसग्गहो ७

पहले मेरा यह चित्त यथेच्छ जिधर चाहता था उधर स्वच्छन्द विचरनेवाला था, किन्तु आज मैं इसे जैसे अंकुश ग्रहण करनेवाला महावत मतवाले हाथी को पकड़ता है, उसी तरह भली भाँति अपने वश में लाऊँगा ॥ ७ ॥

कोशल-नरेश का 'पावेय्यक' नामक वृद्ध हाथी कीचड़ में फँस गया और बहुत जोर करने पर भी निकल न सका, तब चतुर महावत ने आकर रण-भेरी बजवा दी। समर-भेरी का निनाद सुनते ही हाथी सवेग उठकर किनारे आ गया। इस पर भगवान् ने कहा—

अप्पमादरता होथ स-चित्तमनुरक्खथ।
दुग्गा उद्धरथ'त्तानं पङ्के सत्तो'व कुञ्जरो ॥ ८ ॥

अप्रमाद में रत हो जाओ और अपने चित्त की रक्षा करो। कीचड़ में फँसे हुए हाथी की तरह, राग आदि सांसारिक कीचड़ से, अपना उद्धार करो ॥ ८ ॥

एक बार भिक्षुओं द्वारा भगवान् के एकांत-निवास के संबंध में यह पूछने पर कि "भन्ते! आपने अकेले रहकर बड़ा दुष्कर कार्य किया है, जान पड़ता है सेवा के लिए कोई श्रामनेर भी नहीं था।" भगवान् ने कहा—

स चे लभेथ निपकं सहायं सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि चरेय्य तेन'त्तमनो सतीमा ॥ ९ ॥

यदि साथ में विहरनेवाला कोई परिपक्व-बुद्धिवाला अनुकूल पंडित साथी मिल जाय, तो सभी विघ्नों को हटाकर उसके साथ सचेत स्मृतिवान् और प्रसन्न होकर विहार करे ॥ ९ ॥

नो चे लभेथ निपकं सहायं सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं।
राजा'व रट्ठं विजितं पहाय एको चरे मातङ्ग' रञ्ञेव नागो ॥ १० ॥

यदि परिपक्व, बुद्धिमान्, साथ में विहरण करनेवाला पंडित साथी न मिले, तो राजा की तरह पराजित राष्ट्र को छोड़कर गजराज हाथी की भाँति अकेला विचरण करे ॥ १० ॥

एकस्स चरितं सेय्यो नत्थि बाले सहायता ।
एको चरे न च पापानि कयिरा अप्पोस्सुक्को मातङ्ग'रञ्ञे'व नागो ११

अकेला रहना उत्तम है; किन्तु मूढ़ की मित्रता अच्छी नहीं। अकेला विचरे और पाप न करे। मातंगराज हाथी की तरह अनासक्त होकर रहे॥ ११ ॥

एक समय भगवान् हिमालय की ओर एक वन-कुटी में विहार कर रहे थे। उस समय राजाओं ने नाना प्रकार से कर आदि की वृद्धि करके राष्ट्र-वासियों को पीड़ित कर रखा था। भगवान् के मन में ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—"क्या विना किसी को पीड़ा पहुँचाये राज्य-शासन नहीं किया जा सकता?" इस वितर्क को सुअवसर जान मार (कामदेव या शैतान) भगवान् के पास आया और बोला—"क्या, भगवन्! राज्य करेंगे? तथागत विना किसी को पीड़ित किये सुखपूर्वक राज्य कर सकते हैं।" भगवान् ने कहा—"मार! मेरा उद्देश दूसरा है और तेरा अभिप्राय दूसरा। मैं अपने लिए राज्य-सुख नहीं चाहता। मैं अनन्त कोटि दुखित और पीड़ित प्राणियों के सुख की परिकल्पना कर रहा हूँ। तेरे साथ मुझे मंत्रणा नहीं करना है।" यह कहकर समस्त मानवों के सुख के लिए भगवान् ने कहा—

अत्थम्हि जातम्हि सुखा सहाया तुट्ठी सुखा या इतरीतरेन ।
पुञ्ञं सुखं जीवितसङ्खयम्हि सब्बस्स दुक्खस्स सुखं पहाणं ॥ १२ ॥

काम पड़ने पर मित्रों का मिलना सुखकर है। जो मिल जाय उससे सन्तुष्ट रहना सुखकर है। जीवन का क्षय होने पर पहले किया हुआ पुण्य सुखकर है। सारे दुःखों के विनाश के लिए अर्हत् होना सब से अधिक सुखकर है॥ १२ ॥

सुखा मत्तेय्यता लोके अथो पेत्तेय्यता सुखा ।
सुखा सामञ्ञता लोके अथो ब्रह्मञ्ञता सुखा ॥ १३ ॥

लोक में माता की सेवा करना सुखकर है। पिता की सेवा करना

सुखकर है। श्रमण-मात्र (पूर्ण संन्यासी) होना सुखकर है। और ब्राह्मण (पूर्ण-रूपेण पाप-विहीन) होना सुखकर है ॥ १३ ॥

सुखं याव जरा सीलं सुखा सद्धा पतिट्ठिता ।
सुखो पञ्ञाय पटिलाभो पापानं अकरणं सुखं ॥ १४ ॥

वृद्धावस्था तक शीलों का पालन करना सुखकर है। स्थिर सत्य में श्रद्धा और विश्वास सुखकर है। प्रज्ञा का लाभ करना सुखकर है। और पापों का न करना सुखकर है ॥ १४ ॥

२४—तण्हावग्गो

अचिरवती नदी में मल्लाहों ने एक ऐसी मछली पकड़ी जिसका शरीर सोने की तरह चमकता था किंतु मुँह से बड़ी दुर्गन्ध निकलती थी। राजा उस अद्भुत मछली को द्रोणी में रख भगवान् के पास लाये। वहाँ मछली ने मुँह खोला, तो सारा जेतवन दुर्गन्ध से भर गया। राजा के पूछने पर भगवान् ने बताया—"महाराज! यह मछली-रूप-धारी काश्यप बुद्ध के शासन में 'कपिल' नामक शास्त्रधर अहंकारी और दुराचारी भिक्षु था। इसके दुराचार से काश्यप भगवान् का धर्म-शासन दूषित हुआ था। बुद्ध की प्रशंसा और बुद्ध-वचनों के पाठ के फल से इसका शरीर सुवर्ण-वर्ण है और दुराचार एवं भिक्षु-निंदा के कारण मुँह से दुर्गन्ध आती है। अब यह मरकर अवीचि-महानरक में जायगा।" उसी समय वह अद्भुत मछली उछली और द्रोणी में ही मर गई। इस कौतुक से लोग रोमांचित हो गये। तब भगवान् ने "धम्मचरियं-ब्रह्मचरियं" आदि कपिलसुत्त का उपदेश देते हुए कहा—

मनुजस्स पमत्तचारिनो तण्हा वड्ढति मालुवा विय ।
सो पलवती हुराहुरं फलमिच्छं' व वनस्मिं वानरो ॥ १ ॥

प्रमत्त होकर आचरण करनेवाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा-लता की

भाँति बढ़ती है। वन में फल की इच्छा से कूद-फाँद करते वानर की तरह वह नाना जन्मों में भटकता रहता है॥ १॥

यं एसा सहती जम्मि तरहा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति अभिवड्ढं'व वीरणं॥ २॥

यह बारंबार जन्म लेते रहनेवाली विष-रूपी तृष्णा जिसे पकड़ती है, उसके शोक वर्द्धनशील 'वीरण' तृण की तरह बढ़ते हैं॥ २॥

यो चेतं सहती जम्मिं तरहं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पपतन्ति उदबिन्दू'व पोक्खरा॥ ३॥

किंतु जो इस बराबर जन्मते रहनेवाली दुस्त्याज्य तृष्णा को लोक में जीत लेता है, उसके शोक वैसे ही गिर जाते हैं जैसे कमल के पत्तों से पानी की बूँदें॥ ३॥

तं वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता।
तरहाय मूलं खणथ उसीरत्थो'व वीरणं॥ ४॥

इसलिए तुम सब लोगों से, जो यहाँ आये हो, तुम्हारे कल्याण के लिए कहता हूँ कि जैसे खस के लिए लोग उशीर को खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णा की जड़ को खोदो॥ ४॥

वेणुवन में विहार करते समय एक दिन भिक्षाटन के लिए जाते हुए भगवान् ने एक सूअर की बच्ची को देखकर बताया कि "पूर्व-जन्मों में ककुसन्ध बुद्ध के समय यह मुर्गी थी, फिर उबरी नाम की राजकन्या हुई, फिर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुई, फिर वहाँ से च्युत हो जन्म-मरण के चक्कर काटती हुई इस समय सूअर की बच्ची हुई है।" इसे सुनकर प्रमुख भिक्षुओं को संवेग उत्पन्न हुआ, तब भगवान् ने गली में खड़े हुए ही कहा—

यथापि मूले अनुपद्दवे दळ्हे छिन्नोपि रुक्खो पुनरेव रूहति।
एवम्पि तरहानुसये अनूहते निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनं॥ ५॥

जिस प्रकार जड़ें जब तक पूरी तरह उखड़ नहीं जातीं तब तक कटा हुआ वृक्ष भी फिर उग आता है, उसी प्रकार जब तक तृष्णा-

रूपी अनुशय (मल) पूरी तरह नष्ट नहीं हो जाते, तब तक यह दुःख बार-बार पैदा होता रहता है ॥ ५ ॥

यस्स छत्तिंसती सोता मनापस्सवना भुसा ।
वाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥ ६ ॥

जिसके 'छत्तीसो स्रोते' मन को प्रिय लगनेवाली वस्तुओं की ओर ही प्रवाहित रहते हैं, उसके राग-निःसृत संकल्प उसे कुदृष्टि की ओर बहा ले जाते हैं ॥ ६ ॥

सवन्ति सब्बधि सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति ।
तञ्च दिस्वा लतं जातं मूलं पञ्ञाय छिन्दथ ॥ ७ ॥

ये स्रोत सभी ओर बहते हैं। इनसे तृष्णा-रूपी लता अंकुरित रहती है। इस उत्पन्न हुई लता को देखकर प्रज्ञा से इसकी जड़ को काट डालो ॥ ७ ॥

सरितानि सिनेहितानि च सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो ।
ते सोतसिता सुखेसिनो ते वे जाति-जरूपगा नरा ॥ ८ ॥

तृष्णा-रूपी नदियों की धारायें प्राणियों को बड़ी प्रिय और मनोहर लगती हैं। इनके बन्धन में बँधे नर सुख की खोज करते हुए बार-बार जन्म और जरा के चक्कर में पड़ते हैं ॥ ८ ॥

तसिणाय पुरक्खता पजा परिसप्पन्ति ससो'व बाधितो ।
सञ्ञोजनसङ्गसत्ता दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय ॥ ९ ॥

तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी, बँधे हुए खरगोश की तरह चक्कर काटते हैं। मन के संयोजनों या बंधनों में फँसे नर चिरकाल तक बार-बार दुःख पाते हैं ॥ ९ ॥

तसिणाय पुरक्खता पजा परिसप्पन्ति ससो'व बाधितो ।
तस्मा तसिनं विनोदये भिक्खू आकङ्खी विरागमत्तनो ॥ १० ॥

तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी, बँधे खरगोश की तरह, चक्कर काटते हैं। इसलिए अनासक्त होने की इच्छा रखनेवाला भिक्षु तृष्णा को दूर करे ॥ १० ॥

महाकाश्यप स्थविर का एक चारों ध्यानों से संयुक्त शिष्य एक स्त्री का गुप्तांग देख चीवर छोड़ गृहस्थ हो गया, किन्तु निठल्ला होने के कारण घर से निकाल दिया गया और चोरी करने लगा। कुछ दिन बाद एक संगीन मामले में पकड़ा जाकर प्राण-दंड की सजा पा गया। जिस दिन जल्लाद उसे मारने के लिए लिये जा रहे थे, मार्ग में भिक्षाटन के लिए जाते हुए महाकाश्यप स्थविर मिल गये। उन्होंने कहा—"पहले सीखे ध्यानों का स्मरण करो।" उसे स्मरण हो आया और बध-स्थान तक जाते-जाते वह ध्यानावस्थित हो गया, अतः जल्लादों के हथियार का उसके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। यह बात राजा के पास पहुँची, तो राजा ने उसे छोड़ दिया और सारा समाचार भगवान् को सुनाया। तब भगवान् ने कहा—

यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो वनमुत्तो वनमेव धावति ।
तं पुग्गलमेव पस्सथ मुत्तो बन्धनमेव धावति ॥ ११ ॥

निर्वाण की इच्छा वाला पुरुष जो तृष्णा से विमुक्त हो गया है, वह तृष्णा-विमुक्त यदि फिर तृष्णा की ही ओर दौड़ता है, तो उस व्यक्ति को वैसा ही जानो जैसे कोई बन्धन से छूटा हुआ व्यक्ति फिर बन्धन की ही ओर धावमान है ॥ ११ ॥

एक दिन श्रावस्ती में भिक्षाटन करते हुए भिक्षुओं ने ऐसे चोरों को देखा जो जंजीर और रस्सी से ऐसे बँधे थे कि भाग नहीं सकते थे। भिक्षुओं ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! क्या इस से भी अधिक दृढ़ कोई बन्धन है?" भगवान् ने कहा—

न तं दलूहं बन्धनमाहु धीरा यदायसं दारुजं बब्बजञ्च ।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥ १२ ॥

यह जो लोहे, लड़की या रस्सी का बन्धन है, इसे धीर पुरुष बन्धन नहीं कहते। वस्तुतः दृढ़ बन्धन वह है जो मणि, कुंडल, पुत्र और स्त्री में अनुरक्ति का बन्धन है ॥ १२ ॥

एतं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं ।
एतम्पि छेत्त्वान परिब्बजन्ति अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय ।। १३ ।।

धीर पुरुष इन्हीं बन्धनों को सुदृढ़, अपहारक, शिथिल और दुस्त्याज्य कहते हैं। वह लोग अपेक्षा-रहित हो, काम-सुखों को त्याग, इस दृढ़ बन्धन को छिन्न कर प्रव्रजित होते हैं ।। १३ ।।

राजा बिम्बसार की पटरानी खेमा को अपने रूप पर बड़ा गर्व था, इसी कारण वह कभी विहार नहीं जाती थी। एक दिन वेणुवन-विहार की धर्मसभा की बड़ी प्रशंसा सुन वह गई, तो क्या देखती है कि भगवान् के पीछे खड़ी एक अत्यंत सुन्दरी स्त्री पंखा झल रही है। खेमा टकटकी लगाकर उसे देखने लगी। उसका अपने रूप का सारा गर्व खो गया और भगवान् को देखने लगी। तब भगवान् ने कहा—

ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं सयं कतं मक्कटको'व जालं ।
एतम्पि छेत्त्वान वजन्ति धीरा अनपेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय।।१४।।

जो राग में रक्त हैं, वे मकड़ी जैसे अपने बनाये जाले को पकड़ती है, उसी तरह अपने बनाये स्रोत में पड़ते हैं। धीर पुरुष इस स्रोत को भी छिन्न कर सारे दुःखों को छोड़ आकांक्षा-रहित हो चल देते हैं ।। १४ ।।

उग्गसेन राजगृह के एक सेठ का बेटा था, जो एक नट-कन्या पर मोहित हो उसके साथ शादी कर कलाकार नट हो गया था। एक दिन भगवान् जब वेणुवन-विहार से भिक्षाटन के लिए जा रहे थे, तो मार्ग में उन्होंने देखा, उग्गसेन साठ हाथ ऊँचे बाँस पर चढ़ा अपनी कला दिखा रहा था। खेल दिखाकर जब वह भगवान् के चरणों में प्रणाम करने आया, तो भगवान् ने उसे उपदेश दिया—

मुञ्च पुरे मुञ्च पच्छतो मज्झे मुञ्च भवस्स पारगू ।
सब्बत्थ विमुत्तमानसो न पुन जातिजरं उपेहिसि ।। १५ ।।

अगली, पीछे की और बीच की सभी वस्तुओं को त्याग दो, और उन्हें छोड़कर भवसागर के पार हो जाओ। जिसका मन सब ओर से विमुक्त हो जाता है, वह फिर जन्म और जरा के जाल में नहीं फँसता ।। १५ ।।

जेतवन के एक युवक भिक्षु पर एक स्त्री मोहित हो गई। उसकी बातों में आ वह भिक्षु भी चीवर त्यागकर गृहस्थ होने को तैयार हो गया। जब भगवान् को यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने उस भिक्षु को "चुल्ल धनुग्गह जातक" सुनाकर उपदेश दिया—

वितक्कपमथितस्स जन्तुनो तिब्बरागस्स सुभानुपस्सिनो।
भिय्यो तरहा पवड्ढति एसो खो दल्हं करोति बन्धनं॥ १६॥

जो प्राणी सन्देह से मथित, तीव्र राग से युक्त, शुभ ही शुभ को देखनेवाला है, उसकी तृष्णा और भी अधिक बढ़ती है, वह अपने लिए और भी दृढ़ बन्धन तैयार करता है॥ १६॥

वितक्कूपसमे च यो रतो असुभं भावयति सदा सतो।
एस खो व्यन्तिकाहिनी एसच्छेज्जति मारबन्धनं॥ १७॥

सन्देहों के शमित करने में जो लगा है, जो सजग और सचेत रहकर सदा संसार के अशुभ को देखता है, वही मार के बंधन को छिन्न कर तृष्णा का विनाश करेगा॥ १७॥

जेतवन-विहार में श्रामनेर राहुल गंधकुटी के बारामदे में लेटे थे जब कि मार उन्हें भयभीत करने के लिए हाथी के रूप में आया और अपनी सूँड उनके सिर पर रखकर चिंघाड़ने लगा। यह जान गंधकुटी से ही भगवान् ने कहा—

निट्ठङ्गतो असन्तासी वीततरहो अनङ्गरणो।
उच्छिज्ज भवसल्लानि अन्तिमो'यं समुस्सयो॥ १८॥

जिसके पाप-पुण्य समाप्त हो गये हैं अर्थात् जिसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है, जो रागादि के त्रास से निर्भय है, जो तृष्णा-रहित और मल-रहित है, जिसने भव के शल्यों को उच्छिन्न कर दिया है, उसका यह अन्तिम शरीर है॥ १८॥

वीततरहो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो।
अक्खरानं सन्निपातं जञ्ञा पुब्बापरानि च।
स वे अन्तिमसारीरो महापञ्ञो'ति वुच्चति॥ १९॥

जो तृष्णा-रहित और परिग्रह-रहित है, जो निरुक्त और पद का पंडित है, जो अक्षरों को पहले और पीछे रखना जानता है, वह निश्चय ही अन्तिम शरीरवाला तथा महाप्राज्ञ कहा जाता है ॥ १९ ॥

संबोधि-लाभ के बाद भगवान् जब उरुवेला से वाराणसी ऋषिपत्तन जा रहते थे, तो मार्ग में 'उपक' आजीवक मिला। उसने भगवान् के दिव्य तेजोमय रूप को देखकर पूछा—"तुम्हारा आचार्य और गुरु कौन है?" भगवान् ने कहा—

सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो ।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं ॥ २० ॥

मैंने राग आदि सभी को परास्त कर लिया है, मैं दुःखों से मुक्ति पानेवाली सभी बातों को जानता हूँ, मैं सभी धर्मों (विषयों, पदार्थों व अस्तित्वों) से अलिप्त हूँ, मैं सर्वस्वत्यागी हूँ, मैंने तृष्णा का क्षय किया है, मैं विमुक्त हूँ, और मैंने विमल ज्ञान को स्वयं जान लिया है। मैं किसको अपना गुरु बताऊँ ॥ २० ॥

एक बार देवताओं में यह प्रश्न उठा कि दानों में कौन दान श्रेष्ठ है? रसों में कौन रस श्रेष्ठ है? रतियों में कौन रति श्रेष्ठ है? और तृष्णा-क्षय को क्यों श्रेष्ठ कहा जाता है? इन प्रश्नों का ठीक उत्तर जानने के लिए देवराज इन्द्र देवताओं-सहित जेतवन आये, तो भगवान् ने बताया—

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति ।
सब्बं रतिं धम्मरती जिनाति तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति ॥ २१ ॥

धर्म का दान सारे दानों से बढ़कर है, धर्म-रस सभी रसों से बढ़कर है, धर्म-रति सभी रतियों से बढ़कर है और तृष्णा का क्षय सभी दुःख-क्षयों से बढ़कर है ॥ २१ ॥

श्रावस्ती का एक सेठ निःसन्तान मर गया, तो उसका सारा धन राजा ने ले लिया। संपत्ति इतनी अधिक थी कि उसके ढुलकर राज-भवन तक आने में सात दिन लग गये। राजा ने भगवान् से सब हाल बताकर कहा—"भन्ते! सेठ कैसा अभागा था, आप-जैसे सम्यक् संबुद्ध

के निकट रहते हुए भी उसने न कभी धर्म-श्रवण किया, न दान किया, और इतनी अधिक संपत्ति छोड़कर मर गया।" भगवान् ने कहा—

हनन्ति भोगा दुम्मेधं नो चे पारगवेसिनो।
भोगतण्हाय दुम्मेधो हन्ति अञ्ञे'व अत्तानं ॥ २२ ॥

संसार को पार होने का प्रयत्न न करनेवाले दुर्बुद्धि पुरुष को भोग नष्ट कर देते हैं। भोगों की तृष्णा में पड़कर दुर्बुद्धि पराये की तरह अपने ही को हनन करता है ॥ २२ ॥

भगवान् जब तावतिंस-देवलोक में पाण्डुकम्बल शिलासन पर विराजमान थे, देवताओं में यह चर्चा चली कि दान का पात्र कौन है? किसको दिया दान महाफलदायी होता है? इस पर भगवान् ने कहा—

तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २३ ॥

खेतों का दोष तृण है, और मनुष्यों का दोष राग है। इस लिए राग-रहित पुरुष को दान देना महाफलदायी होता है ॥ २३ ॥

तिणदोसानि खेत्तानि दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २४ ॥

खेतों का दोष तृण है और मनुष्यों का दोष द्वेष है। इस लिए द्वेष-रहित पुरुष को दान देना महाफलदायी होता है ॥ २४ ॥

तिणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २५ ॥

खेतों का दोष तृण है और मनुष्यों का दोष मोह है। इस लिए मोह-रहित पुरुष को दान देना महाफलदायी होता है ॥ २५ ॥

तिणदोसानि खेत्तानि इच्छादोसो अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥ २६ ॥

खेतों का दोष तृण है और मनुष्यों का दोष इच्छा है। इस लिए इच्छा-रहित पुरुष को दान देना महाफलदायी होता है ॥ २६ ॥

———

२५—भिक्खुवग्गो

जेतवन-विहार में पाँच ऐसे भिक्षु थे जो पाँच इन्द्रियों में केवल एक-एक का संयम करते थे। एक दिन उनमें विवाद उठा कि किस इन्द्रिय का संवर करना अधिक कठिन है। इस बात का निर्णय आपस में न हो सकने के कारण भिक्षुओं ने भगवान् के पास जो प्रश्न किया, तो भगवान् ने कहा—

चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेनं संवरो।
घाणेन संवरो साधु साधु जिह्वाय संवरो ॥ १ ॥

आँख का संयम करना अच्छा है, कान का संयम करना अच्छा है, नाक का संयम करना अच्छा है, जिह्वा का संयम करना भी अच्छा है ॥ १ ॥

कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥ २ ॥

काया का संयम ठीक है, वाणी का संयम ठीक है, मन का संयम ठीक है, और सभी का संयम बहुत ठीक है। सबका संयम करनेवाला भिक्षु दुःखों से विमुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

एक दिन अचिरवती नदी में स्नान करके भिक्षु लोग धूप ले रहे थे कि एक तरुण भिक्षु ने आकाश में उड़ते हुए हंसों की ओर एक कंकड़ ऐसा मारा कि एक हंस की आँख फूट गई और वह तड़पकर भूमि पर गिर पड़ा। यह बात भगवान् तक पहुँचने पर उन्होंने उस भिक्षु को बुलाकर बहुत डाँटा, और 'कलिंग जातक' की कथा सुनाकर व्यवस्था दी—

हत्थसञ्ञतो पादसञ्ञतो वाचाय सञ्ञतो सञ्ञतुत्तमो।
अज्झत्तरत्तो समाहितो एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं ॥ ३ ॥

जिसके हाथ, पैर और वाणी संयत हैं, जो उत्तम संयमी है, जो अपने भीतर के सुधार में रत है, जो समाधि-युक्त है, जो अकेला रहता है और जो सन्तुष्ट है, उसे ही भिक्षु कहा जाता है ॥ ३ ॥

कोकालिक भिक्षु असंयमी था। उसने अग्रश्रावकों से गुस्ताखी की, जिससे वह धरती में धँसकर मर गया। भगवान् ने उस पर खेद प्रकाश करते हुए कहा—

यो मुखसञ्ञतो भिक्खु मन्तभाणी अनुद्धतो।
अत्थं धम्मञ्च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥ ४ ॥

जो मुख में संयम रखता है, जो मनन और सोच-विचार कर बोलता है, जो उद्धत नहीं है, जो अर्थ और धर्म को प्रकट करता है, जिसका भाषण मधुर होता है, वही भिक्षु है ॥ ४ ॥

"चार महीने बाद मेरा परिनिर्वाण होगा" भगवान् की इस सूचना को सुन धम्माराम स्थविर बहुत चिंतित हुए। वह चाहते थे कि भगवान् के रहते ही अर्हत्व लाभ कर लें। इसलिए वह धर्म-चिंतन और धर्म-रत रहने के लिए एकांत-वास करने लगे। उन्होंने भिक्षुओं से बोलना बंद कर दिया। यह सुनकर भगवान् ने स्थविर धम्माराम को साधुकार देते हुए कहा—

धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु सद्धम्मा न परिहायति ॥ ५ ॥

धर्म में रमण करनेवाला, धर्म में रत, धर्म का चिन्तन तथा धर्म का अनुसरण करनेवाला भिक्षु सच्चे धर्म से च्युत नहीं होता ॥ ५ ॥

एक तरुण भिक्षु कुछ दिन देवदत्त के यहाँ रह देवदत्त का लाभ-सत्कार खाता रहा और फिर वेणुवन-विहार में आया। भगवान् ने भिक्षु के लिए दूसरे का लाभ खाने की निन्दा करते हुए कहा—

सलाभं नातिमञ्ञेय्य नाञ्ञेसं पिहयं चरे।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खु समाधिं नाधिगच्छति ॥ ६ ॥

अपने लाभ की अवहेलना नहीं करना चाहिए। दूसरों के लाभ की चाह करनेवाला भिक्षु समाधि को नहीं प्राप्त करता ॥ ६ ॥

अप्पलाभोपि चे भिक्खु स-लाभं नातिमञ्ञति।
तं वे देवा पसंसन्ति सुद्धाजीविं अतन्दितं ॥ ७ ॥

चाहे लाभ अल्प ही हो, भिक्षु अपने लाभ की अवहेलना न करे। देवता लोग उसी की प्रशंसा करते हैं, जो शुद्ध जीविका वाला और आलस्यरहित है ॥ ७ ॥

श्रावस्ती का एक ब्राह्मण खेत बोकर काटने तक पाँच बार भिक्षुओं को भोजन देता था। इसलिए उसका नाम 'पंचग्र-दायक' हो गया था। एक दिन भिक्षाटन के लिए जाते हुए भगवान् उसके द्वार पर खड़े हो गये। उस समय वह ब्राह्मण घर में द्वार की ओर पीठ किये बैठा भोजन कर रहा था। घर के भीतर भगवान् के मुख की छः रंगवाली आभा आते देख ब्राह्मणी हँस पड़ी। ब्राह्मण ने भी पीछे घूम भगवान् को खड़ा देख हाथ जोड़कर बंदना की और भोजन दान करके पूछा—"भो गौतम! आप अपने शिष्यों को भिक्षु कहते हैं, कोई भिक्षु कैसे होता है?" भगवान् ने कहा—

सब्बसो नाम-रूपस्मिं यस्स नत्थि ममायितं ।
असता च न सोचति स वे भिक्खू'ति वुच्चति ॥ ८ ॥

जिसकी नाम-रूपात्मक संसार में बिलकुल ही ममता नहीं, और जो किसी वस्तु के न रहने पर शोक नहीं करता, वही 'भिक्षु' कहा जाता है ॥ ८ ॥

महा कात्यायन के शिष्य कुटिकण्ण सोण स्थविर जब चारिका से वापस आये, तो उनकी माँ नगर में भेरी बजवाकर, बड़ी भीड़ के साथ, उनका उपदेश सुनने गई। उसी अवसर पर बहुत-से चोर उसके घर में घुसकर माल ढोने लगे। दासी ने दौड़कर उपासिका को खबर दी। उपासिका ने कहा—"चोरों की जो इच्छा हो, ले जायँ, उपदेश सुनने में विघ्न मत डाल।" चोरो के सरदार ने, जो उपासिका की निगरानी कर रहा था, इस बात से प्रभावित हो, जाकर चोरों से कहा—"सब चुराया माल जहाँ का तहाँ रखकर धर्म-सभा में आओ।" उपदेश समाप्त होने पर सरदार ने उपासिका के पैरों पर गिरकर क्षमा माँगते हुए प्रार्थना की—"मुझे

भी कृपया अपने पुत्र के पास प्रव्रजित कराइए।" सरदार की तरह सभी चोरों ने प्रार्थना की। निदान सब के सब प्रव्रजित और उपसम्पन्न हो कर्मस्थान ले पर्वत पर जा, अलग-अलग पेड़ों के नीचे बैठ, उद्योग करने लगे। भगवान् ने गंधकुटी में बैठे हुए ध्यान-शक्ति से इन नव-भिक्षुओं को देख इनके सामने दिव्य प्रकाश कर दिया और उसी प्रकाश के बीच समक्ष बैठे हुए की भाँति उपदेश दिया—

मेत्ताविहारी यो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ॥ ९ ॥

जो मैत्री-भावना के साथ विहार करनेवाला भिक्षु बुद्ध-शासन में श्रद्धावान् और प्रसन्न रहता है, वह सभी संस्कारों को शमन करने वाले शान्त और सुखमय पद को प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

सिञ्च भिक्खु! इमं नावं सित्ता ते लहुमेस्सति।
छेत्त्वा रागञ्च दोसञ्च ततो निब्बानमेहिसि ॥ १० ॥

हे भिक्षु! इस नाव को उलीचो। उलीचने पर यह तुम्हारे लिए हल्की हो जायगी। राग और द्वेष छिन्न करके फिर तुम निर्वाण को प्राप्त होगे ॥ १० ॥

पंच छिन्दे पञ्च जहे पञ्चचुत्तरि भावये।
पञ्च सङ्गातिगो भिक्खु ओघतिण्णो'ति वुच्चति ॥ ११ ॥

जो पाँच अवरभागीय संयोजनों का छेदन करके, पाँच ऊर्ध्वभागीय संयोजनों को त्याग दे। फिर जो इनके प्रहाण के लिए (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा इन) पाँच की भावना करे और (राग, द्वेष, मोह, मान और मिथ्याधारणा, इन) पाँच के संसर्ग को अतिक्रमण कर जाय, वही भिक्षु (काम, भव, दृष्टि और अविद्या-रूपी) ओघों (बाढ़ों) से उत्तीर्ण हुआ कहा जाता है ॥ ११ ॥

झाय भिक्खु! मा च पमादो मा ते कामगुणे भमस्सु चित्तं।
मा लोहगुलं गिली पमत्तो मा कन्दि दुक्खमिदन्ति डय्हमानो ॥ १२ ॥

हे भिक्षुओ! ध्यान में लगो। प्रमाद मत करो। तुम्हारा चित्त

भोगों के चक्कर में न पड़े। प्रमत्त होकर लोहे के गोले को मत निगलो। ताकि "हाय! यह दुःख" कहकर जलते हुए तुम्हें रोना न पड़े ॥ १२ ॥

नत्थि झानं अपञ्ञस्स पञ्ञा नत्थि अझायतो ।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च स वे निब्बानसन्तिके ॥ १३ ॥

प्रज्ञा-विहीन पुरुष को ध्यान नहीं होता है, ध्यान न करनेवाले को प्रज्ञा नहीं हो सकती। जिसमें ध्यान और प्रज्ञा दोनों हैं, वही निर्वाण के निकट है ॥ १३ ॥

सुञ्ञागारं पविट्ठस्स सन्तचित्तस्स भिक्खुनो ।
अमानुसी रती होति सम्माधम्मं विपस्सतो ॥ १४ ॥

शून्य एकांत गृह में रहनेवाले, शान्त-चित्त, सम्यक् धर्म की विपश्यना करनेवाले भिक्षु को लोकोत्तर आनंद की प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

यतो यतो सम्मसति खन्धानं उदयब्बयं ।
लभती पीतिपामोज्जं अमतं तं विजानतं ॥ १५ ॥

मनुष्य जैसे-जैसे पंच-स्कंधों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) की उत्पत्ति और विनाश पर विचार करता है, वैसे ही वैसे वह ज्ञानियों की प्रीति और प्रमोद-रूप अमृत को प्राप्त करता है ॥ १५ ॥

तत्रायमादि भवति इध पञ्ञस्स भिक्खुनो ।
इन्द्रियगुत्ती सन्तुट्ठी पातिमोक्खे च संवरो ।
मित्ते भजस्सु कल्याणे सुद्धाजीवे अतन्दिते ॥ १६ ॥

इस धर्म में प्रज्ञावान् भिक्षु को पहले यह करना होता है—इंद्रिय-संयम, सन्तोष और प्रातिमोक्ष (भिक्षुओं के आचार) की रक्षा। इसके लिए उसे चाहिए कि वह शुद्ध आजीविका वाले, आलस्य-रहित तथा अच्छे मित्रों की संगति करे ॥ १६ ॥

पटिसन्थारवुत्तस्स आचारकुसलो सिया ।
ततो पामोज्जबहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सति ॥ १७ ॥

जो सेवा-सत्कार स्वभाववाला तया आचार के पालन में निपुण है, वह सानन्द दुःख का अन्त करेगा ॥ १७ ॥

जेतवन-विहार में बहुत-से भिक्षु शास्ता से कर्मस्थान ग्रहण कर उद्योग के लिए जाते हुए प्रातःकाल फूले हुए जूही के फूलों को संध्या तक मुरझाकर गिरते देखकर बोले—"तुम्हारे कुम्हलाकर गिरने से पूर्व ही हम राग आदि से मुक्त होंगे।" इसे दिव्य श्रवणों से सुन गंधकुटी में विराजमान भगवान् ने कहा—

वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुञ्चति।
एवं रागञ्च दोसञ्च विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो ॥ १८ ॥

जैसे जूही कुम्हलाये फूलों को छोड़ देती है, उसी तरह भिक्षुओ! तुम राग और द्वेष को छोड़ दो ॥ १८ ॥

एक स्थविर का नाम 'शान्तकाय' इसलिए था कि उनका शरीर प्रत्येक प्रकार से शान्त रहता था। उठने, बैठने, चलने, लेटने, बोलने आदि में उनका कोई अंग नहीं हिलता था। उनकी प्रशंसा करते हुए भगवान् ने कहा—

सन्तकायो सन्तवाचो सन्तवा सुसमोहितो।
वन्तलोकामिसो भिक्खु उपसन्तो'ति वुच्चति ॥ १९ ॥

जिसका शरीर शान्त है, जिसकी वाणी शान्त है, जिसका मन शान्त है, जो समाधि-युक्त है, जिसने लौकिक भोगों को त्याग दिया है, वह भिक्षु उपशांत कहलाता है ॥ १९ ॥

जेतवन-विहार में एक स्थविर का नाम 'नङ्गलकुल' इस कारण था क्योंकि वे नङ्गल (हल) चलाना छोड़कर प्रव्रजित हुए थे और अपने हल को, प्रव्रजित होते समय, एक वृक्ष पर टाँग गये थे। वह भिक्षु-जीवन से उदास हो गृहस्थ हो जाने के लिए बार-बार उस हल के पास जाते और अपने आप विरक्त होकर लौट आते थे। एक बार उन्हें अपने-आप पूर्ण विरक्ति हो गई और उन्होंने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। भिक्षुओं ने उनकी कथा जब भगवान् को सुनाई, तो उन्होंने कहा—

अत्तना चोदय'त्तानं पटिवासे अत्तमत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खु विहाहिसि ॥ २० ॥

जो अपने ही आप अपने को प्रेरित करेगा, अपने ही आप अपने को संलग्न करेगा, वह आत्मसंयमी, अपने ही द्वारा रक्षित, आत्म-गुप्त, स्मृतिमान् भिक्षु सुखपूर्वक विहार करेगा ॥ २० ॥

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति ।
तस्मा सञ्ञमयत्तानं अस्सं भद्रं'व वाणिजो ॥ २१ ॥

मनुष्य आप ही अपना स्वामी है, आप ही अपनी गति है। इस लिए अपने आपको उसी तरह संयमी बनाये जैसे घोड़े का व्यापारी अपने घोड़े को सुंदर बनाता है ॥ २१ ॥

वक्कलि स्थविर का जन्म श्रावस्ती के एक ब्राह्मण-कुल में हुआ था। वह भगवान् के सुन्दर रूप पर अनुरक्त हो प्रव्रजित हुए और भगवान् के साथ रह सदा उनका रूप निहारा करते थे। एक दिन भगवान् ने उनसे कहा—"वक्कलि! इस अपवित्र शरीर को देखने से क्या लाभ? जो धर्म को देखता है, वह मुझे देखता है।" किंतु इस उपदेश पर भी रूप-सौन्दर्योपासक वक्कलि ने भगवान् का साथ न छोड़ा। तब शास्ता ने उन्हें वर्षोपनायिका के दिन "हट जा वक्कलि?" कहकर हटा दिया। इस पर निराश हो वक्कलि कूदकर जान दे देने के इरादे से गृद्धकूट पर्वत पर चढ़ गये। भगवान् ने दिव्य-दृष्टि से उनकी दशा देख उनके आगे दिव्य प्रकाश कर दिया, और उस प्रकाश में उनके समक्ष होकर कहा—

पामोज्जबहुलो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने ।
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ॥ २२ ॥

जो भिक्षु बुद्ध के उपदेश में श्रद्धावान् और प्रमुदित है, वह सभी संस्कारों को शमन करनेवाले सुखमय शान्त पद को प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

सात वर्ष की आयु वाला सुमन श्रामनेर अनुरुद्ध स्थविर के साथ पूर्वाराम-विहार में आया, तो पृथक्जन भिक्षु उसके कान, हाथ आदि पकड़कर कहते—"श्रामनेर! प्रसन्न हो?" यह देख भगवान् ने आनंद स्थविर से कहा—"मैं अनवतप्त जल से हाथ-पैर धोना चाहता हूँ, किसी श्रामनेर को भेज एक घड़ा पानी मँगाओ।" जब

आनंद स्थविर श्रामनेरों के पास गये, तो अर्हत-श्रामनेर इसलिए तैयार नहीं हुए क्योंकि वे जानते थे कि भगवान् सुमन श्रामनेर की शक्ति का प्रकाश करना चाहते हैं और प्रथक्जन इसलिए कि वे असमर्थ थे। अंत में जब सुमन से कहा गया, तो वह तुरन्त एक बड़ा घड़ा ले आकाश-मार्ग से जाकर पानी ले आया। जब सुमन श्रामनेर पानी ले आया, तो भगवान् ने उसे दायज-उपसंपदा देकर भिक्षु बना दिया। सुमन श्रामनेर के इस प्रकार उपसम्पन्न होने पर भिक्षुओं में विवाद होने लगा, तो शास्ता ने सबके समाधान के लिए कहा—

यो ह वे दहरो भिक्खु युञ्जते बुद्धसासने।
सो इमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा ॥२३॥

जो भिक्षु तरुणाई में ही बुद्ध-शासन में संलग्न हो जाता है, यह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोक में प्रकाशमान होता है ॥ २३ ॥

२६—ब्राह्मणवग्गो

श्रावस्ती में एक श्रद्धालु ब्राह्मण नित्य सोलह भिक्षुओं को भोजन कराता था और जब भिक्षु लोग उसके यहाँ जाते तो श्रद्धा से कहता—"आइए अर्हन्त लोग, बैठिए अर्हन्त लोग, भोजन कीजिए अर्हन्त लोग।" उसके इस संबोधन से भिक्षुओं में जो पृथक्जन होते, वे लज्जित होते थे। एक दिन संकोच-वश कोई भिक्षु उसके यहाँ नहीं गया, तो दुखित ब्राह्मण ने भगवान् के पास पहुँच निवेदन किया—"भन्ते! एक भी आर्य आज मेरे घर भोजन करने नहीं गये।" भगवान् ने भिक्षुओं से न जाने का कारण पूछा, तो सारी बात भिक्षुओं ने कह सुनाई। भगवान् ने समझाया—"ब्राह्मण श्रद्धा से तुम्हें 'अर्हन्त' कहता है, श्रद्धापूर्वक कहने में कोई आपत्ति नहीं होती।" यह समझाकर भगवान् ने कहा—

छिन्द सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण!
सङ्खारानं खयं ञत्वा अकतञ्ञूसि ब्राह्मण! ॥ १ ॥

हे ब्राह्मण ! तृष्णा के स्रोत को छिन्न कर दे, पराक्रम करके कामनाओं को दूर कर दे। संस्कारों अथवा कृत-वस्तुओं के क्षय को जान कर, हे ब्राह्मण ! तुम अकृत-निर्वाण को प्रत्यक्ष कर लोगे॥ १॥

एक दिन जेतवन में तीस दिशावासी भिक्षु आये। सारिपुत्र स्थविर ने उनके सामने खड़े हुए ही शास्ता से पूछा—"भन्ते ! दो धर्म कौन-से हैं ?" भगवान् ने शमथ और विपश्यना को बताते हुए कहा—

यदा द्वयेसु धम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो।
अथस्स सब्बे संयोगा अत्थं गच्छन्ति जानतो॥ २॥

जब ब्राह्मण शमथ और विपश्यना दोनों धर्मों में पारंगत हो जाता है, तब उस जानकार के सभी संयोगों-बन्धनों का अन्त हो जाता है॥ २॥

एक दिन मार ने ब्राह्मण के रूप में जेतवन-विहार में आकर भगवान् से पूछा—"भन्ते ! 'पार' किसे कहते हैं ?" भगवान् ने उसके कूट प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—

यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति।
वीतद्दरं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३॥

जिसके पार (आँख, कान, नाक, जिह्वा, काया और मन), अपार (रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्म) और पारापार (मैं और मेरा) नहीं है, उस निर्भय और अनासक्त पुरुष को मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥ ३॥

एक बार जेतवन-विहार में एक ब्राह्मण ने भगवान् से पूछा—"भो गौतम ! आप अपने श्रावकों को 'ब्राह्मण' कहकर पुकारते हैं, मैं तो जाति से ही ब्राह्मण हूँ।" भगवान् ने जाति और गोत्र को मिथ्या अहंकार बताते हुए कहा—

झायिं विरजमासीनं कतकिच्चं अनासवं।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ४॥

जो ध्यानी, निर्मल, आसीन, स्थिर, कृत-कृत्य और आश्रवों (चित्त-मलों) से रहित है, जिसने उत्तम अर्थ निर्वाण को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥ ४॥

एक बार पूर्वाराम-विहार में आनंद स्थविर ने भगवान् से कहा—"भन्ते ! आज विविध प्रकाशों को देखते हुए मुझे आपका ही प्रकाश सबसे उत्तम प्रतीत हुआ।" इसे सुन शास्ता ने कहा—

दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा ।
सन्नद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो ।
अथ सब्बमहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा ॥ ५ ॥

दिन में सूर्य तपता है, रात में चन्द्रमा प्रकाश करता है, आभूषणों से अलंकृत होने पर राजा चमकता है, ध्यानी होने पर ब्राह्मण तपता है, किन्तु बुद्ध अपने तेज से दिन-रात सबसे अधिक तपते हैं ॥ ५ ॥

एक दिन किसी अबौद्ध द्वारा प्रव्रजित एक ब्राह्मण भगवान् के पास आकर बोला—"भो गौतम ! आप अपने शिष्यों को 'प्रव्रजित' कहते हैं, मैं भी प्रव्रजित हूँ।" भगवान् ने कहा—

बाहितपापो'ति ब्राह्मणो समचरिया समणो'ति वुच्चति ।
पब्बाजयमत्तनो मलं तस्मा पब्बजितो'ति वुच्चति ॥ ६ ॥

जिसने पाप को धोकर बहा दिया है, वह ब्राह्मण है। जो समता का आचरण करता है, वह श्रमण है। चूँकि उसने अपने चित्त-मलों को हटा दिया है, इसलिए वह प्रव्रजित कहा जाता है ॥ ६ ॥

"क्रोध आता है या नहीं" इस बात की परीक्षा के लिए श्रावस्ती में एक ब्राह्मण ने भिक्षाटन के लिए जाते हुए स्थविर सारिपुत्र को पीछे से जाकर पीठ पर एक घूँसा मारा। किंतु स्थविर ने पीछे घूमकर देखा भी नहीं। लज्जित और अनुतप्त ब्राह्मण ने स्थविर के चरणों में गिर क्षमा माँगी और अपने घर ले जाकर उन्हें भोजन कराया। इस घटना से भिक्षु चिंतित हुए कि "अब सभी भिक्षु मारे जायँगे और मार-मार कर भोजन कराया जायगा।" भिक्षुओं की बात सुन भगवान् ने कहा—

न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुंचेथ ब्राह्मणो ।
धि ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धि यस्स मुञ्चति ॥ ७ ॥

निष्पाप ब्राह्मण पर प्रहार नहीं करना चाहिए और पाप-विहीन ब्राह्मण को भी उस प्रहारकारी पर क्रोध नहीं करना चाहिए। जो ब्राह्मण को मारता है उसे धिक्कार है, और उसको भी धिक्कार है जो उसके लिए कोप करता है ॥ ७ ॥

न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो यदा निसेधो मनसो पियेहि ।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति ततो ततो सम्मति एव दुक्खं ॥ ८ ॥

ब्राह्मण के लिए यह बात कम कल्याणकारी नहीं है जो वह प्रिय पदार्थों से मन को हटा लेता है। जहाँ-जहाँ मन हिंसा से मुड़ता है, वहाँ-वहाँ दुःख अवश्य ही शान्त हो जाता है ॥ ८ ॥

एक बार भिक्षुओं ने महाप्रजापती गौतमी की शिकायत की कि उसने विना किसी आचार्य या उपाध्याय के अपने आप ही रँगकर चीवर पहन लिया है। भगवान् ने बताया—"भिक्षुओं! महाप्रजापती गौतमी का आचार्य और उपाध्याय मैं हूँ। मैंने उसे आठ गुरुतर धर्मों का आदेश दिया है। जो काय-दुश्चरित से रहित और क्षीणाश्रव है, उससे संकोच नहीं करना चाहिए।" यह बताकर भगवान् ने कहा—

यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं ।
संवुतं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ९ ॥

जिसके मन, वचन और काया से दुष्कृत व पाप नहीं होते, जो इन स्थानों से संवर और संयम-युक्त रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ९ ॥

अश्वजित स्थविर सारिपुत्र स्थविर के आचार्य थे। सारिपुत्र सोते समय नित्य जिस दिशा में उनके आचार्य रहते थे, उधर हाथ जोड़कर अपना सिर कर लेते थे। इसे भिक्षुओं ने 'दिशा-नमस्कार' और 'मिथ्या दृष्टि' नाम देकर भगवान् से शिकायत की। भगवान् ने यह बताकर कि सारिपुत्र दिशा-नमस्कार नहीं, अपितु अपने आचार्य को नमस्कार करते हैं, कहा—

यम्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्धदेसितं ।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्गिहुत्तं'व ब्राह्मणो ॥ १० ॥

जिस आचार्य से सम्यक् संबुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म को जाने, उसे उसी तरह सत्कार-सहित नमस्कार करे जिस तरह ब्राह्मण लोग अग्निहोत्र को करते हैं ॥ १० ॥

जेतवन-विहार में एक दिन भगवान् के पास एक जटाधारी ब्राह्मण आकर बोला—"भो गौतम! आप अपने श्रावकों को 'ब्राह्मण' कहते हैं। मैं ब्राह्मण-कुल में सुजात माता-पिता से उत्पन्न हुआ हूँ, मुझे भी ब्राह्मण कहिए।" इस पर भगवान् ने कहा—

न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥ ११ ॥

न जटा से, न गोत्र से और न जन्म से ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुचि एवं पवित्र है और वही ब्राह्मण है ॥११॥

जिस समय भगवान् वैशाली की कूटागार-शाला में विहार करते थे, वैशाली का एक पाखंडी ब्राह्मण नखों में नील लगा, नगर के पास, एक पीपल की डाल में पैर फँसाकर उलटा लटक गया और नगर-वासियों से बोला—"मुझे सौ गायें, सौ कार्षापण और दो परिचारि-काएँ दो, नहीं तो मैं सिर के बल गिरकर मर जाऊँगा और ब्रह्म-राक्षस होकर नगर को उजाड़ दूँगा।" लोग डर गये, और उसकी माँग पूरी करने लगे। भिक्षाटन करते हुए भिक्षुओं ने उसे देख उसकी लीला भगवान् को सुनाई, तो भगवान् ने बताया—"उसका व्यवसाय यही है" और कहा—

किं ते जटाहि दुम्मेध! किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि ॥ १२ ॥

हे दुर्बुद्धि! जटाओं से तेरा क्या बनेगा, और मृगचर्म लपेटने से क्या लाभ? भीतर तेरा चित्त राग आदि मलों से परिपूर्ण है, बाहरी आडम्बर से क्या होता है? ॥ १२ ॥

जिस समय भगवान् गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे, एक रात देवों के साथ आकर इंद्र कुशल-क्षेम पूछ रहा था। उसी समय किसा गौतमी

थेरी आकाश-मार्ग से आई और शक्र को देख आकाश से ही प्रणाम कर लौट गई। इंद्र के पूछने पर भगवान् ने बताया—"यह पंशुकुल (चीथड़े) धारण करनेवाली थेरियों में अग्रणीं किसा गौतमी नामक मेरी पुत्री है।" यह बताकर भगवान् ने कहा—

पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं ।
एकं वनस्मिं झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १३ ॥

जो प्राणी फटे चीथड़े धारण करता है, जो नसों और त्वचा से मढ़े दुबले-पतले शरीरवाला है और जो वनों में अकेला ध्यान-रत रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ १३ ॥

एक बार श्रावस्ती के एक ब्राह्मण ने भगवान् के पास आकर कहा—"भो गौतम ! आप अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहते हैं, मैं तो ब्राह्मण-योनि से पैदा हुआ हूँ, मुझे क्यों ब्राह्मण नहीं मानते ?" भगवान् ने कहा—

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसम्भवं ।
'भो वादि' नाम सो होति स चे होति सकिञ्चनो ।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १४ ॥

माता और योनि से उत्पन्न होने से मैं किसी को ब्राह्मण नहीं कहता। वह तो "भो-वादी" और संग्रही है। जो लेने की इच्छा न रखनेवाला और अपरिग्रही है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ १४ ॥

राजगृह में प्रव्रजित उग्गसेन ने जब कहा—"नहीं डरता हूँ।" तो इसका तात्पर्य भिक्षुओं को समझाते हुए भगवान् ने कहा—

सब्बसञ्ञोजनं छेत्वा यो वे न परितस्सति ।
सङ्गातिगं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १५ ॥

जो सारे संयोजनों व बंधनों को काटकर तृष्णा से नहीं डरता है, उस राग आदि के संग और आसक्ति से विरत पुरुष को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ १५ ॥

श्रावस्ती के दो ब्राह्मण अपने-अपने बैलों की मजबूती दिखाने के लिए अचिरवती के किनारे गाड़ियों में खूब बालू भर बैलों को जोत

हाँकने लगे, तो रस्सी और नद्धा सब टूट गया, ब्राह्मण हार गये, पर गाड़ी अपनी जगह से न टसकी। भिक्षुओं ने इसे देख जब भगवान् से बताया, तो उन्होंने कहा—

छेत्वा नद्धिं वरत्तञ्च सन्दामं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १६ ॥

जो क्रोध-रूपी नद्धा, तृष्णा-रूपी रस्सी, ६२ प्रकार के मतवाद-रूपी पगहे और अनुशय-रूप मुँहेड़े को काट एवं अविद्या-रूपी जुए को फेंककर बुद्ध हुआ है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ १६ ॥

राजगृह में भरद्वाज, आक्रोशक, सुन्दरिक और विलिङ्गक नामक चार भाई विद्वान् ब्राह्मण थे। ये भगवान् के विरुद्ध 'मुंडे श्रमण' आदि नाना प्रकार के अभद्र-असभ्य शब्द कहा करते थे। एक दिन भरद्वाज झुंझलाकर शास्त्रार्थ करने के इरादे से वेणुवन-विहार में गया किन्तु भगवान् के मधुर और पुनीत वचनों को सुन प्रव्रजित हो गया। इसी तरह क्रमशः चारों भाई प्रव्रजित हो अर्हत्व-पद को प्राप्त हो गये। भिक्षुओं ने भगवान् के आश्चर्यजनक शान्त और मधुर वचनों की जब चर्चा की, तो भगवान् ने कहा—

अक्कोसं बधबन्धञ्च अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १७ ॥

जो बिना दूषित चित्त किये गाली, वध और बन्धन को सहन करता है, क्षमा-बल ही जिसकी शक्तियों का सेनापति है, उस जित-क्रोध को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ १७ ॥

वेणुवन में विहार करते समय एक दिन सारिपुत्र स्थविर भिक्षुओं के साथ भिक्षाटन के लिए अपने गाँव नालक को गये। वहाँ उनकी माँ ने सबको भोजन कराया। भोजन परसते समय सारिपुत्र की माँ ने उन्हें अनेक कटु-वचन कहे किंतु सारिपुत्र ने शान्त और प्रसन्न मन से सब सुन लिया। भिक्षुओं ने लौटकर जब सारिपुत्र की क्रोध-हीनता की प्रशंसा की, तो भगवान् ने कहा—

अक्कोधनं वतवन्तं सीलवन्तं अनुस्सुतं ।
दन्तं अन्तिमसारीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १८ ॥

जो अक्रोधी, बलवान्, शीलवान्, अनुत्सुक, दान्त और अन्तिम शरीरवाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ १८ ॥

धर्मसभा में भिक्षुओं के "क्या क्षीणाश्रव भी काम का सेवन करते हैं ?" प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने कहा—

वारि पोक्खरपत्ते'व आरग्गेरिव सासपो ।
यो न लिप्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १९ ॥

कमल के पत्ते पर जल और आरे की नोक पर सरसों की भाँति जो भोगों में लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ १९ ॥

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण का दास भागकर प्रव्रजित हो अर्हत्व पा गया। ब्राह्मण ने एक दिन उसे भगवान् के पीछे भिक्षाटन के लिए जाता हुआ देख उसके चीवर को जोर से पकड़ लिया। भगवान् ने उसे पकड़ा हुआ देख "ब्राह्मण! यह फेंके बोझ वाला है।" कहा, तो ब्राह्मण ने साधु समझ उसे छोड़ दिया। तब भगवान् ने कहा—

यो दुक्खस्स पजानाति इधेव खयमत्तनो ।
पन्नभारं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २० ॥

जो इसी जन्म में अपने दुःखों के विनाश को जान लेता है, जिसने अपने बोझ को उतार फेंका है और जो आसक्ति-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २० ॥

इसी प्रकार मार्ग-अमार्ग की ज्ञाता, भिक्षुणी खेमा के संबंध में, जो देवराज इन्द्र की मौजूदगी में, आकाश-मार्ग से आई और शक्र को बैठे देख आकाश से ही भगवान् को प्रणाम कर लौट गई थी, भगवान् ने कहा—

गम्भीरपञ्ञं मेधाविं मग्गामग्गस्स कोविदं ।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २१ ॥

जो गम्भीर प्रज्ञावाला, मेधावी, मार्ग-अमार्ग का ज्ञाता, उत्तम अर्थ निर्वाण को पाये हुए है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २१ ॥

तिस्स स्थविर नितांत संसर्ग-रहित थे। जिस कन्दरा में रहकर वह श्रमण-धर्म करते थे, उसके वासी देवता उन्हें वहाँ रहने देना नहीं चाहते थे, अतएव क्रोध उपजाने वाले नाना उपद्रव करते रहते थे, किन्तु स्थविर कभी भी न उद्विग्न हुए और न क्षुब्ध। वर्षावास समाप्त करके जब भगवान् के दर्शनार्थ जेतवन आये, तो उनकी अलिप्तता और संसर्ग-रहितता के संबंध में भगवान् ने कहा—

असंसट्ठं गहट्ठेहि अनागारेहि चूभयं।
अनोकसारिं' अप्पिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २२ ॥

घर वाले गृहस्थ और बे-घर वाले विरक्त, दोनो ही से जो संसर्ग नहीं रखता, जो विना ठिकाने के घूमता और जो अत्यल्प इच्छा वाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २२ ॥

अरण्य में अर्हत्व लाभ कर एक भिक्षु भगवान् के दर्शनार्थ आ रहे थे। मार्ग में एक स्त्री, जो पति से झगड़ा करके अपने पीहर जा रही थी, भिक्षु के पीछे-पीछे चलने लगी। इतने में उसका पति आ गया। उसने यह समझ कि यह साधु मेरी स्त्री को प्रलोभन देकर लिये जा रहा है, भिक्षु को पकड़कर खूब मारा, और स्त्री को लेकर लौट गया। किंतु क्षीणाश्रव भिक्षु में तनिक भी क्षोभ, क्रोध या प्रतिहिंसा-भावना नहीं हुई। जब वह विहार में आया, तो भगवान् ने कहा—

निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २३ ॥

जो चर-अचर सभी प्राणियों में प्रहार-विरत है, जो न कभी किसी को मारता है और न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २३ ॥

चार भिक्षुओं के लिए भोजन तैयार कराकर श्रावस्ती का एक ब्राह्मण विहार से चार श्रामनेरों को ले गया। इस पर ब्राह्मणी बड़ी रुष्ट हुई और उसने किसी वृद्ध स्थविर को लाने के लिए ब्राह्मण को विहार भेजा। ब्राह्मण पहले स्थविर सारिपुत्र को और फिर महामोग्गलायन को लाया, किंतु श्रामनेरों को बैठे देख वे दोनो वापस चले गये।

तब ब्राह्मणी ने किसी बूढ़े ब्राह्मण को लाने को कहा। ब्राह्मण आया, किंतु श्रामनेरों को बैठे देख प्रणाम कर भूमि पर बैठ गया। इस पर ब्राह्मणी बहुत अधिक रुष्ट हुई और बोली—"निकाल दो इसे हमारे घर से।" किंतु वह ब्राह्मण किसी भी तरह निकाले न निकला। विवश हो श्रामनेरों के साथ उसे भी खिलाना पड़ा। भोजनोपरान्त श्रामनेर विहार गये, तो सारी कथा सुन भगवान् ने उनके अक्रोध, अविरोध और धैर्य की प्रशंसा करते हुए कहा—

अविरुद्धं विरुद्धेसु अत्तदण्डेसु निब्बुतं।
सादानेसु अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ २४॥

जो विरोधियों के बीच विरोध-रहित है, जो दण्डधारियों के बीच दण्ड-रहित है, जो संग्रह करनेवालों के बीच संग्रह-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥ २४॥

एक बार महापन्थक स्थविर ने चूलपन्थक स्थविर को वेणुवन-विहार से निकाल दिया था। इसकी चर्चा होते समय भिक्षुओं ने प्रश्न किया—"क्या क्षीणाश्रवों में भी क्रोध होता है?" भगवान् ने कहा—

यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो।
सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ २५॥

आरे की नोक पर सरसों की भाँति जिसके चित्त से राग, द्वेष, मान और डाह निकालकर फेंक दिये गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥ २५॥

वेणुवन में पिलिन्दि वच्छ स्थविर प्रव्रजितों और गृहस्थों सभी को "आओ वसल" (आओ शूद्र) कहकर बुलाते थे। इस बात की शिकायत होने पर भगवान् ने बताया—"वच्छ ने पहले पाँच सौ जन्मों तक ब्राह्मण-कुल में जन्म लेकर 'वसलवाद' का अभ्यास किया है, उसी अभ्यास के वश वह ऐसा कहता है। उसका चित्त शुद्ध है, वह सत्य-ग्राही और सत्य-वक्ता है।" यह बताकर भगवान् ने कहा—

अकक्कसं विञ्ञापनिं गिरं सच्चं उदीरये।
याय नाभिसजे किञ्चि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ २६॥

जो अकर्कश, आदरयुक्त तथा ऐसे सत्य वचन बोलता है, जिनसे किसी को कुछ भी पीड़ा न हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २६ ॥

श्रावस्ती का एक ब्राह्मण अपनी पुरानी चादर को अपने पीछे ज़मीन पर डालकर घर के द्वार की ओर मुख किये बैठा था। उधर से भोजन से निवृत्त हो एक स्थविर विहार जा रहे थे। उन्होंने उसे पंशुकूल (चीथड़ा) समझ उठा लिया। ब्राह्मण उनके पीछे दौड़ा। स्थविर ने यह कहकर "ब्राह्मण ! यह तेरा वस्त्र है, मैंने इसे पंशुकूल समझकर उठाया था।" वस्त्र दे दिया। यह बात जब भगवान् के पास पहुँची तो उन्होंने कहा—

यो'ध दीघं व रस्सं वा अणुं थूलं सुभासुभं ।
लोके अदिन्नं नादियते तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २७ ॥

चीज दीर्घ हो या ह्रस्व, मोटी हो या पतली, शुभ हो या अशुभ, जो संसार में विना दिये हुए किसी भी चीज को नहीं लेता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २७ ॥

स्थविर सारिपुत्र जब एक गाँव के विहार में वर्षावास समाप्त करके चलने लगे, तो भिक्षुओं से कहा—"यदि दायक लोग अपने वचनों के अनुसार वस्त्र दें, तो तरुण श्रमनेरों द्वारा उन्हें जेतवन-विहार भेज देना।" इस पर भिक्षु कहने लगे—"जान पड़ता है, स्थविर सारिपुत्र की तृष्णा का क्षय नहीं हुआ है।" भिक्षुओं की बात सुन भगवान् ने स्थविर सारिपुत्र को तृष्णा-विरहित बताते हुए कहा—

आसा यस्स न विज्जन्ति अस्मिं लोके परम्हि च ।
निरासयं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २८ ॥

इस लोक और परलोक के विषय में जिसकी तृष्णाएँ क्षीण हो गई हैं, जो आशा-रहित और आसक्ति-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २८ ॥

इसी तरह स्थविर महा मोग्गलायन को तृष्णा-विहीन बताते हुए भगवान् ने कहा—

यस्सालया न विज्जन्ति अञ्ञाय अकथंकथी ।
अमतोगधं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २९ ॥

जिसे तृष्णा नहीं है, जो भली प्रकार जानकर संशय-रहित हो गया है, जिसने पैठकर अमृत-पद निर्वाण को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २९ ॥

इसी प्रकार रैवत स्थविर को भी पुण्य-पाप-विहीन कहते हुए भगवान् ने कहा—

यो'ध पुञ्ञञ्च पापञ्च उभो सङ्गं उपच्चगा ।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३० ॥

जिसने यहाँ पुण्य और पाप दोनों की आसक्ति को छोड़ दिया है, जो शोक-रहित, निर्मल और विशुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥३०॥

राजगृह के चंदाभ ब्राह्मण की नाभि से चन्द्रमा-जैसी आभा निकलती थी। ब्राह्मण उसे लेकर नगर-नगर घुमाते थे और उसके शरीर का स्पर्श कराकर लोगों से धन संग्रह करते थे। ब्राह्मण कौतुक दिखाते हुए उसे लेकर जेतवन-विहार पहुँचे, तो भगवान् के सामने जाते ही चंदाभ की आभा लुप्त हो गई। बाद में चंदाभ प्रव्रजित हो शीघ्र ही अर्हत्व को पा गया। उसकी तृष्णा नष्ट हुई देखकर भगवान् ने कहा—

चन्दं'व विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं ।
नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३१ ॥

जो चन्द्रमा की भाँति विमल, शुद्ध, स्वच्छ है तथा जिसके सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३१ ॥

सीवलि-स्थविर, कहते हैं, कोलिय-माता सुप्पवासा के गर्भ में सात वर्ष रहकर उत्पन्न हुए, और बचपन ही में प्रव्रजित हो अर्हत्व-प्राप्त हो गये। धर्मसभा में उनकी मोह-हीनता की चर्चा होने पर भगवान् ने कहा—

यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा ।
तिण्णो पारगतो झायी अनेजो अकथंकथी ।
अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३२ ॥

जिसने इस दुर्गम संसार और जन्म-मरण के चक्कर में डालनेवाले मोह-रूपी उलटे मार्ग को त्याग दिया है, जो संसार से पारंगत, ध्यानी तथा तीर्ण (तर गया) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३२ ॥

श्रावस्ती-वासी कुलपुत्र सुन्दरसमुद्र भगवान् के उपदेश से उत्साहित और प्रव्रजित हो भिक्षुओं के साथ राजगृह में रहने लगा। उसके माँ-बाप ने उसे वापस लाने के लिए एक चतुर गणिका को बहुत धन देकर राजगृह भेजा। गणिका ठाठ से राजगृह में एक सतमंजिला महल भाड़े पर लेकर रहने लगी और सुन्दरसमुद्र को भिक्षाटन के लिए जाते समय पहले भोजन देने लगी, फिर बैठाकर खिलाने लगी। दो-तीन दिन बाद बोली—"भन्ते! भीतर आकर भोजन किया कीजिए, बाहर लड़के धूल उड़ाते हैं।" जब सुन्दरसमुद्र घर के भीतर भोजन करने लगे तो गणिका ने लड़कों को सधाया कि जब स्थविर आवें, तब शोर मचाना। लड़के स्थविर को देख हल्ला मचाने लगे। "भन्ते! ऊपर चलिए, लड़के हल्ला मचाते हैं"—कहकरगणिका उन्हें ऊपर चढ़ाते हुए नीचे के किंवाड़े बन्द करती गई। जब स्थविर सातवीं मंजिल पर पहुँच गये, तो उनके आगे नाना प्रकार के हाव-भाव दिखाकर बोली—"आप तरुण हैं, मैं भी तरुणी हूँ। आइए, हम दोनो साथ रहें। वृद्धावस्था में हम दोनो प्रव्रजित हो जायँगे।"

यह सुन स्थविर को तीव्र धर्म-संवेग उत्पन्न हुआ। बोले—"अहो! मैंने बहुत बड़ा अपराध किया जो यहाँ चला आया।" उन्होंने आर्त-भाव से भगवान् को स्मरण किया। भगवान् ने जेतवन-विहार में बैठे हुए ही ऋद्धिबल से वहाँ दिव्य प्रकाश व्याप्त कर दिया, और उस प्रकाश में प्रत्यक्ष होकर भगवान् ने कहा—

यो'ध कामे पहत्वान अनागारो परिब्बजे।
कामभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३३ ॥

जो समस्त सांसारिक भोगों को त्याग, बे-घर बन, प्रव्रजित हो गया है, उस भोग और जन्म-विहीन को मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३३ ॥

[उपदेश के अन्त में अर्हत्व लाभकर स्थविर आकाश-मार्ग से उड़ भगवान् के निकट आये और भक्ति-भाव से शास्ता की वन्दना की ।]

राजगृह के दो श्रेष्ठी जटिल और जोतिय जब अपनी अतुल संपत्ति और परिवार त्यागकर प्रव्रजित हुए, तो भगवान् ने कहा—

योऽध तण्हं पहत्त्वान अनागारो परिब्बजे ।
तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३४ ॥

जो यहाँ तृष्णा को त्याग बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, जिसकी तृष्णा और जन्म नष्ट हो गये हैं, उसे मै ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३४ ॥

वेणुवन में एक नटपुत्र ने भगवान् का उपदेश सुन प्रव्रजित हो थोड़े ही दिनों में अर्हत्व प्राप्त कर लिया । एक दिन भिक्षुओं ने एक नट को खेल करते देख प्रव्रजित नटपुत्र से पूछा—"क्या तुझे इन खेलों से स्नेह है ?" उसने कहा—"अब मुझे स्नेह नहीं है ।" धर्मसभा में उसकी चर्चा चलने पर भगवान् ने कहा—

हित्त्वा मानुसकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा ।
सब्बयोगविसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३५ ॥

जो मानुषी भोगों के बन्धनों को त्याग दिव्य भोगों के बन्धनों को भी छोड़ चुका है, जो सभी बंधनों से विमुक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३५ ॥

हित्त्वा रतिञ्च अरतिञ्च सीतिभूतं निरूपधिं ।
सब्बलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३६ ॥

जो रति और अरति को त्यागकर शीतल-स्वभाव और क्लेश-रहित है, जो सर्व-लोक-जयी और वीर है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३६ ॥

राजगृह में एक बंगीस ब्राह्मण मृत मनुष्यों की खोपड़ी देख उनके उत्पत्ति-स्थान को बताता था । ब्राह्मण उसे लेकर नगर-नगर घूमते और रुपया कमाते थे । एक दिन इस जादूगर को लेकर ब्राह्मण भगवान् के पास पहुँचे । भगवान् ने उसके सामने नरक, पशु-योनि, मनुष्य-लोक और देव-लोक में उत्पन्न व्यक्तियों के कपालों के साथ एक

अर्हत् के कपाल को भी रख दिया। बंगीस चार कपालों के उत्पत्ति-स्थान तो बता गया, पाँचवें को न बता पाया। तब भगवान् ने कहा—"बंगीस! इसे तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ।" बंगीस बोला—"हे श्रमण! मुझे भी वह मंत्र बता दीजिए।" भगवान् ने कहा—"बंगीस! बिना प्रव्रजित हुए मैं किसी को मंत्र नहीं बताता।" निदान बंगीस प्रव्रजित हो गया। भगवान् ने उसे कर्मस्थान बताया, जिससे थोड़े ही दिनों में उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। एक दिन ब्राह्मण उसे बुलाने आये, तो उसने कहा—"अब मैं जाने योग्य नहीं हूँ।" भिक्षुओं ने इसे भगवान् को बताया, तो उन्होंने कहा—

चुतिं यो वेदि सत्तानं उपपत्तिञ्च सब्बसो।
असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३७॥

जो प्राणियों की च्युति (मृत्यु) और उत्पत्ति को भली भाँति जानता है, जो आसक्ति-रहित, सुगत (सुंदर गति को प्राप्त) और बुद्ध (ज्ञानी) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥ ३७॥

यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धब्बमानुसा।
खीणासवं अरहन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३८॥

जिसकी गति को देवता, गन्धर्व और मनुष्य नहीं जानते, जो क्षीणाश्रव और रागादि-रहित अर्हत् है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ॥ ३८॥

राजगृह-निवासी विशाख और उसकी स्त्री धम्मदिन्ना जब प्रव्रजित हो गये, तो धम्मदिन्ना उद्योग कर शीघ्र अर्हत्व को प्राप्त हो गई। अर्हत्व प्राप्त कर धम्मदिन्ना जब राजगृह लौटी, तो एक दिन विशाख ने उसके पास जाकर 'चूलबेदल्ल-सुत्त' में आये प्रश्नों को पूछा। धम्मदिन्ना ने सभी प्रश्नों के उत्तर देकर कहा—"विशाख! इन प्रश्नों को भगवान् से भी पूछना।" विशाख ने शास्ता के पास पहुँच सब हाल बताया, तो भगवान् ने यह बताते हुए कि "मेरी पुत्री ने जो उत्तर दिये हैं, मैं भी इन प्रश्नों के यही उत्तर देता।" कहा—

यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं ।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३९ ॥

जिसके पूर्व और पश्चात् एवं मध्य में कुछ नहीं है, जो परिग्रह-रहित और अकिंचन है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३९ ॥

एक दिन जेतवन-विहार में भिक्षुओं ने अङ्गुलिमाल के अर्हत्व के संबंध में चर्चा की, तो भगवान् ने अङ्गुलिमाल स्थविर को 'अकम्प्य' बताते हुए कहा—

उसभं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं ।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४० ॥

जो ऋषभ श्रेष्ठ, प्रवर, वीर, महर्षि, विजेता, अकम्प्य, स्नातक और बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४० ॥

जेतवन-विहार में एक समय भगवान् को वायुरोग हुआ, तो उन्होंने उपवान स्थविर को गरम जल और राव लाने के लिए देवङ्गिक ब्राह्मण के पास भेजा। देवङ्गिक प्रसन्न हो, दोनो चीजें लेकर भगवान् के पास आया। गरम जल में राव घोलकर पीने से भगवान् का रोग दूर हो गया। भगवान् को अच्छा हुआ जान देवङ्गिक ने पूछा—"भन्ते ! किसको दिया हुआ दान महाफलदायक होता है ?" भगवान् ने कहा—

पुब्बेनिवासं यो वेदि सग्गा पायञ्च पस्सति ।
अथो जातिक्खयंपत्तो अभिञ्ञावोसितो मुनि ।
सब्बवोसित वोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४१ ॥

जो पूर्व-जन्म को जानता है, जो स्वर्ग और अगति को देखता है, जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो गया है, जो अभिज्ञा अर्थात् दिव्य ज्ञान-परायण है, उसे मैं ब्राह्मण मानता हूँ। उसे दान देने से महाफल होता है ॥ ४१ ॥

धम्मपदं
हिन्दी-अनुवाद और प्रासंगिक कथा-सहित
समाप्त हो गया

बौद्ध-शब्दों की सूची

अकिंचन—राग, द्वेष और मोह से रहित।

अनुशय—सात प्रकार के दोष—काम-राग या भोग-तृष्णा, प्रति-हिंसा, मानाभिमान, मिथ्या-दृष्टि, विचिकित्सा या सन्देह, भवराग अर्थात् संसार या स्वर्ग में रहने की इच्छा और अविद्या या अज्ञान।

अपद—राग, द्वेष और मोह से रहित होना, अकिंचन होना।

अर्थकथा (अट्ठकथा)—गाथा के अर्थ से संबंधित कहानी। धम्मपद की २६ वर्गों में विभक्त ४२३ गाथाएँ भगवान् बुद्ध के ४२ वर्षों में कहे गये उपदेश हैं। कौन उपदेश कब, कहाँ, किसको, किस बात पर दिया गया, उसकी कहानी का नाम 'अट्ठकथा' है।

अर्हत्—कामाश्रव, भवाश्रव, दृष्ट्याश्रव, अविद्याश्रव—इन चारो आश्रवों से रहित व्यक्ति।

आभास्वर—वह लोक जहाँ के प्राणियों का शरीर आभामय होता है, रूपलोक। और वहाँ की एक जाति।

आयतन—आँख, कान, नाक, जिह्वा, काया या त्वचा और मन—ये छः भीतरी आयतन हैं और रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श और धर्म—ये छः इनके विषय बाहरी आयतन हैं।

आर्य—स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्, इन चारो को बौद्ध-शास्त्रों में 'आर्य' कहा गया है।

आश्रव (आसव)—चार प्रकार के चित्त-मल। कामाश्रव (भोग-संबंधी मल), भवाश्रव (भिन्न-भिन्न लोकों में जन्म लेने की इच्छा-रूपी मल), दृष्ट्याश्रव (६२ प्रकार की मिथ्या-दृष्टि-रूप मल) और अविद्याश्रव (दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध और दुःख-निरोध के उपाय, पूर्वान्त, अपरान्त, पूर्वापरान्त तथा प्रतीत्य-समुत्पाद—इन आठ बातों का ज्ञान न होना)।

इन्द्र—तावतिंस देवलोक का राजा, शक्र।

इन्द्रखील—नगर-द्वार पर खड़ा किया गया पत्थर का बहुत बड़ा सुदृढ़ स्तंभ।

उपाधि—स्कन्ध, काम, क्लेश और कर्म।

ऊर्ध्वस्रोत—देवलोक या ब्रह्मलोक में उत्पन्न होकर ऊपर ही ऊपर निर्वाण प्राप्त कर लेना।

ऋजुभूत—कुटिलता-रहित, स्रोतापन्न से अर्हत् पर्यन्त पुरुष।

कर्मस्थान (कम्मट्ठान)—किसी आलंबन पर ध्यान-भावना का अभ्यास। भिन्न-भिन्न साधकों के लिए बौद्ध-शास्त्रों में ४० प्रकार के कम्मट्ठानों का वर्णन है।

कायगता-स्मृति—शरीर के भीतर भरी गंदगियों की याद। इस शरीर में केश, रोम, नख, दन्त, त्वक्, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा, वृक्क, हृदय, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आँत, मल, मूत्र, पित्त, कफ, पीप, लोहू, पसीना, मेद, आँसू, लार, लसिका, यकृत इत्यादि जो ३२ प्रकार की गंदगियाँ हैं, उनकी स्मृति।

चक्षुमान—पाँच प्रकार के ज्ञान-चक्षु से युक्त।

तथागत—तथा-गत या तथा-आगत। ध्येय तक पहुँचे हुए बुद्ध।

तृष्णा—आँख, कान, घ्राण, रसना, त्वक् और मन, इन छओं इंद्रियों के भोगों की प्यास।

थेर—स्थविर, वृद्ध भिक्षु।

थेरी—स्थविरा, वृद्धा भिक्षुणी।

नाम-रूप—वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान चार मानसिक अवस्थाएँ 'नाम' हैं तथा आँख, कान, नाक, हाथ, पैर, सिर, धड़ 'रूप' है। शारीरिक और मानसिक दोनो अवस्थाओं के पुंज को 'नाम-रूप' कहा जाता है।

निर्वाण—राग, द्वेष, मोह का पूर्णक्षय हो जाने पर मोक्ष-रूपी परम सुख। निर्वाण के तीन नाम हैं—शून्य, अनिमित्त और अप्रणिहित। अनात्म को साक्षात् करके तृष्णा का क्षय 'शून्य-निर्वाण' है; अनित्य को

साक्षात् करके तृष्णा का क्षय 'अनिमित्त-निर्वाण' है और दुःख का साक्षात् करके तृष्णा का क्षय 'अप्रणिहित्त-निर्वाण' है।

नीवरण—चित्त को ढँके हुए पाँच आवरण—कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यान मृद्ध, औद्धत्य, कौकृत्य और विचिकित्सा।

प्रातिमोक्ष—भिक्षु-भिक्षुणियों के पालन के लिए भगवान् के द्वारा आदेशित पाराजिक, संघावशेष, अनियत, निःसर्गिक, पातयन्तिक, प्रातिदेशनीय, शैक्ष और अधिकरणशमथ आठ प्रकार के नियम। इन नियमों की संख्या पाली विनयपिटक के अनुसार २१८ और सर्वास्तिवादी महायान के अनुसार २६३ है।

मार—कुशल-कर्मों का विरोधी, इंद्र के ऊपर और ब्रह्मा के नीचे का देवता। जो समस्त प्राणियों को अपने अधीन मोहाभिभूत रखता है। इसके तीन नाम हैं: क्लेश-मार, मृत्यु-मार और देवपुत्र मार। इसे प्रजापति, कामदेव या शैतान भी कहा जाता है।

मार्ग—आर्य अष्टांगिक मार्ग: सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। दुःखों से छूटने का रास्ता।

मार्ग-फल—चार मार्ग और चार मार्ग-फल। स्रोतापत्ति-मार्ग और स्रोतापत्ति-फल, सकृदागामी-मार्ग और सकृदागामी-फल, अनागामी-मार्ग और अनागामी-फल, अर्हत्-मार्ग और अर्हत्-फल। इन्हीं आठों प्रकार के मार्ग-फल-प्राप्त पुरुषों के समूह का नाम 'श्रावक-संघ' है।

मिथ्या दृष्टि—शाश्वतवाद और उच्छेदवाद। एक नित्य कूटस्थ शाश्वत आत्मा है, जो एक शरीर से निकलकर दूसरे शरीर में चला जाता है, यह शाश्वतवाद है; मरने के बाद व्यक्तित्व का लोप हो जाता है, यह उच्छेदवाद है। बौद्ध-दर्शन के अनुसार यह दो अन्तोंवाली मिथ्या-दृष्टि है। इनके बीच का मार्ग ही सम्यक् दृष्टि है।

शमथ-विपश्यना—पाँच नीवरणों को दूर करके प्राप्त की गई

समाधि को 'शमथ-समाधि' तथा अनित्य, अनात्म, दुःख का विचार करके संयोजनों के प्रहाण को 'विपश्यना-समाधि' कहते हैं।

शील—हिंसा, चोरी, झूठ, व्यभिचार और मादक द्रव्य सेवन से बचे रहना, ये पाँच शील गृहस्थों के हैं तथा इन पाँचों के साथ विशुद्ध ब्रह्मचर्य, अपराह्न भोजन, नृत्य-गीत-माला-सुगंध-लेपन, गुलगुली ऊँची शय्या और सोना-चाँदी आदि द्रव्यों का त्याग इत्यादि भिक्षुओं के शील हैं।

शून्य—समाधिस्थ हो सत्ता-मात्र के अनित्य, दुःख, अनात्म स्वरूप का साक्षात् कर लेना। शून्य का साक्षात् कर लेने से तृष्णा का प्रहाण होता है और तृष्णा का क्षय होने से निर्वाण लाभ होता है।

शैक्ष्य—अर्हत्-पद को नहीं प्राप्त हुए स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी नामक आर्य 'शैक्ष्य' कहे जाते हैं, क्योंकि इन्हें अभी सीखना होता है।

श्रामनेर—भिक्षु होने का उम्मेदवार बौद्ध श्रमण, जिसे भिक्षु-संघ ने भिक्षु होने की अभी दीक्षा नहीं दी है।

सम्बोध्यङ्ग—स्मृति, धर्म-विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा—ये सात सम्बोधि के अङ्ग हैं।

संयोजन—सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रत-परामर्श, काम-राग, रूपराग, अरूपराग, प्रतिघ, मान, औद्धत्य और अविद्या—ये दस भव-बंधन।

सुगत—चरम ध्येय पर सुंदर रूप से पहुँचे हुए, बुद्ध।

संवेग—जोश, आवेश, विशेषतः धर्म का आवेश।

स्रोतापन्न—बुद्ध द्वारा उपदेशित धर्म की धारा में इस तरह पड़ जाना कि निरन्तर आगे ही बढ़ते रहना। निर्वाण-गामी स्रोत में आपन्न होना।

स्कंध—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान—ये पाँच स्कंध हैं।

क्षीणाश्रव—अर्हत्, जिसके चारो आश्रव क्षीण हो गये हैं।

गाथा-सूची

———